भगवान् गोपीनाथ जी

काश्मीर



भगवान् गोपीनाथ जी
काश्मीर
(एक चरितात्मक निबन्ध)

मूल लेखक
पण्डित शङ्करनाथ फोतदार

अनुवादक
पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

सम्पादक
न्याय-मूर्ति पण्डित शिवनाथ काटजू

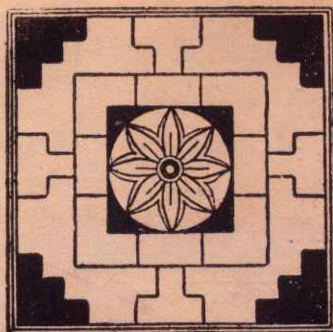
प्रकाशक
भगवान् गोपीनाथ जी ट्रस्ट
खरयार, श्रीनगर, काश्मीर

प्रकाशक
भगवान् गोपीनाथ जी ट्रस्ट (रजि०)
खरयार,
श्रीनगर (कश्मीर)

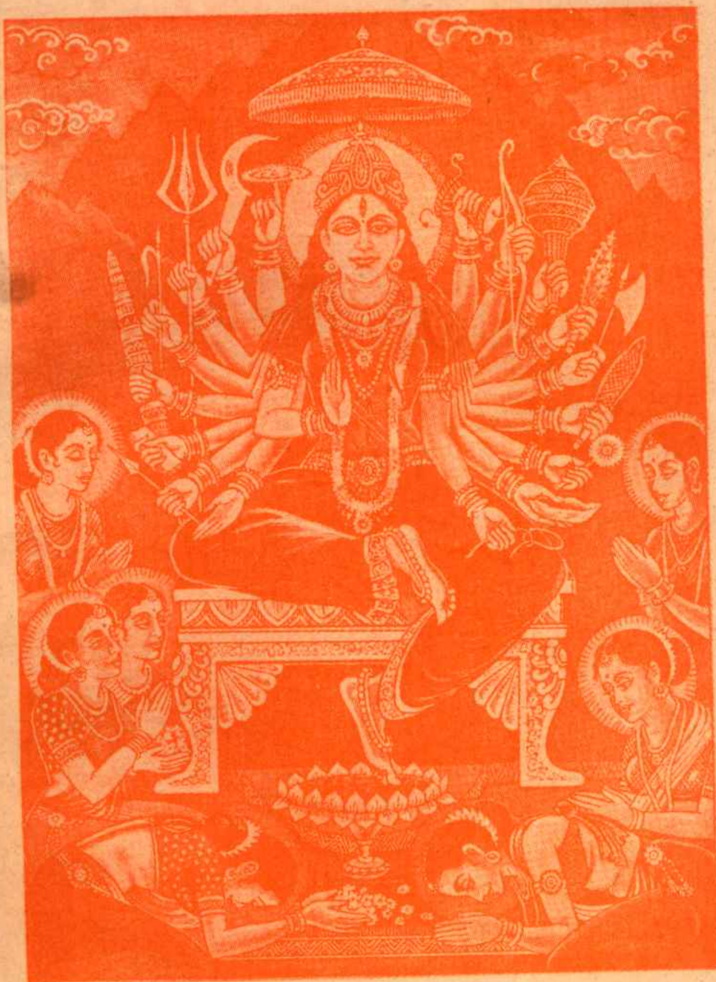
मूल्य ५—०० रु०

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग
प्रयाग—६

अनुक्रमणिका



भगवती श्री शारिका



या खड्गं डमरुं त्रिशूल-परशू खट्वाङ्ग-पाशौ गदां।
चक्रं मुद्गर-चाप-बाण-वरदाभीतीः कपालांकुशौ ।
धत्ते तोमर-पुस्तके च मुसलं दोर्भिर्दशाष्टभिः,
देवीभिः परिवारिता शशि-धरा सा शारिका पातु नः ॥

ॐ नमो भगवते गोपीनाथाय

अपने सद्‌गुरु भगवान गोपीनाथ जी के चरण-कमलों के प्रति जिन्होंने इस चरितात्मक निबन्ध के लिये प्रेरणा दी ।

आमुख

यद्यपि भगवान् गोपीनाथ जी कभी काश्मीर घाटी से बाहर नहीं गये, तथापि भारत के सुदूर कोनों से काश्मीर आनेवाले बहुसंख्यक साधु उनसे भली प्रकार परिचित थे और वे आज भी उनका स्मरण एक अद्वितीय सिद्ध, अवधूत, आत्म-ज्ञानी तथा परम दयालु पुरुष के रूप में किया करते हैं। उनकी भौतिक उपस्थिति का अभाव वे आज भी अनुभव करते हैं। वे कहते हैं कि भारत में ऐसे सन्त, जो चौबीसों घण्टे ब्रह्म-स्वरूप में लीन रहते हों, बहुत कम मिलते हैं।

काश्मीर में भी भगवान् गोपीनाथ बहुत प्रसिद्ध थे क्योंकि उन्होंने बहुत से लोगों की आध्यात्मिक प्रगति में तथा अन्य अनेक लोगों की भौतिक लक्ष्य-प्राप्ति में सहायता की थी।

अपने जीवन की लगभग ७७ वर्ष की अवधि में मैं अनेक सन्तों के सम्पर्क में आया हूँ उनमें से कुछ बहुत ही पहुँचे हुए थे किन्तु मैं नहीं समझता कि उनमें से कोई भी अहं-शून्य आत्म-ज्ञान में भगवान् गोपीनाथ जी से आगे बढ़ पाया हो। लोग उन्हें 'भगवान्' कहते थे और वे थे भी वैसे। मैं उन्हें व्यक्ति-गत रूप से अनेक वर्षों से जानता था, विशेष कर १६३७-४६ के दशक से, जब वे मेरे श्वसुर के मकान में ठहरे थे और जब कभी मैं उनके दर्शनार्थ गया, मैंने उनके सान्निध्य में सदैव परम शान्ति का अनुभव किया।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक श्री शङ्करनाथ फ़ोतदार ने इसलिए वास्तव में यह एक महान् कार्य किया है कि उन्होंने अपने संस्मरणों को लिपि-बद्ध कर इस महान् रहस्यपूर्ण सन्त

के जीवन की गतिविधि का सजीव चित्रण कर दिया है अन्यथा यह सब विस्मृति के गर्भ में विलीन हो जाता।

इस कठिन विषय पर लिखने के लिये श्री फ़ोतदार पूर्ण अधिकारी हैं क्योंकि भगवान् जी की कृपा से उन्हें पारदर्शिनी दृष्टि और समीक्षात्मिका बुद्धि प्राप्त है तथा दो दशकों से अधिक समय तक वे उनके घनिष्ठ सम्पर्क में रहे हैं। इसके पूर्व वे मेरे पूर्वजों के गृह में लगभग पन्द्रह वर्षों तक काश्मीर के एक अन्यतम रहस्यपूर्ण सन्त स्वामी सोना काक जी के निकट सम्पर्क में रहे और वास्तव में उन्होंने (स्वामी सोना काक ने) ही वैशाख १९९९ में अपने महानिर्वाण के लगभग छः मास पूर्व श्री फ़ोतदार को यह निर्देश किया था कि वे 'डल-हसन-यार' मोहल्ले के निवासी 'पण्डित सन्त' (अर्थात् भगवान् गोपीनाथ जी) से मिलते रहें। इसके बाद भगवान् गोपीनाथ जी १९४६ में पहले पहल श्री फ़ोतदार से श्री क्षीरभवानी मन्दिर में मिले, जब कि वे वहां स्वयं आये और उनके पास बैठकर उन्हें अपनी पी हुई आधी सिगरेट प्रदान की।

श्री फ़ोतदार तब से प्रतिदिन अपराह्न में भगवान् जी के स्थान पर, जब कभी वे श्रीनगर में रहते (वर्ष में लगभग सात महीने), आते रहे और ३-४ घण्टे उनके पवित्र सान्निध्य में व्यतीत करते रहे तथा अपनी साधना में उन जैसी महान् विभूति के समक्ष तल्लीन रहे।

वे भाग्यशाली थे क्योंकि भगवान् जी कभी-कभी उनकी साधना की कमियाँ उन्हें बताते रहे, अपने रहस्यपूर्ण ढंग से उन्हें सही राह पर लगाते रहे और इस प्रकार स्वयं गुरुदेव के आशीर्वाद और मार्ग-दर्शन में उन्होंने उच्चतर आध्यात्मिकता के पथ पर अच्छी प्रगति की है।

भगवान् जी और उनके आदर्शों के प्रति श्री फ़ोतदार को गहरी निष्ठा तथा उनके अथक उत्साह एवं श्री प्राणनाथ कौल, श्री शिबनलाल तुरकी, बहन जयकिशोरी जी, श्री गोपीनाथ मल्ला, श्री मोहन किशन तिकू और श्री जे० एल० नेहरू जैसे भगवान् जी के कुछ तेजस्वी तरुण भक्तों के एक समूह की सहायता के फलस्वरूप काश्मीर के इतिहास में इस महान् सन्त के अनुरूप पहले-पहल एक स्मारक स्थापित हुआ है, जो परमात्म-दर्शन के मार्ग के भावी अन्वेषकों और महत्वाकांक्षियों को प्रोत्साहित करेगा।

जय भगवान्

—श्रीधर जू धर
अवकाश-प्राप्त कंज़र्वेटर आफ़ फ़ारेस्ट
प्रेसीडेण्ट, भगवान् गोपीनाथ जी ट्रस्ट
श्रीनगर (कश्मीर)

भूमिका

आज भारत, जो विगत शताब्दियों में सन्तों और साधुओं का घर, संसार की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक का उत्तराधिकारी और आध्यात्मिक ज्ञान एवं सत्य के शोध-कर्ताओं के लिये प्रेरणा का मन्दिर रहा है, स्वयं अपने अन्तर्गत विपरीत परिवर्तनों का साक्षी हो रहा है। जिस समाज का यहाँ आविर्भाव हो रहा है, वह उन मूल तत्वों के ही प्रति अन्यमनस्क है, जिन्होंने उसे सुरक्षित बने रहने में तब सहायता की थी, जब भूतकाल में अन्य सभ्यताओं को क्रान्तियाँ बहा ले गईं। यदि हम इस नई, प्रत्यक्षतः लुभावनी किन्तु विनाशक प्रवृत्ति को अवरुद्ध करने तथा उलटने के लिए निश्चित प्रयास नहीं करते, तो सम्भव है कि शीघ्र ही हम अपने को पश्चिम के समान बिना पतवार के और भौतिकवाद की दासता में पाएँ। हमें निश्चय ही अपनी पुनः शोध करनी चाहिए और जो सर्व-शक्तिमान सार्वभौम आत्मा विश्व के भाग्य का नियन्त्रण और पोषण करता है, उसके प्रति अपनी आस्था तथा अपने लुप्त-प्राय नैतिक मूल्यों की उपलब्धि करनी चाहिये।

राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर जैसे अवतारों के अतिरिक्त भारत ने भागवत पुरुषों अर्थात् सन्तों के एक जाज्वल्यमान समूह को जन्म दिया, जिन्होंने नैतिक आदर्शों की उन्नति करने और ईश्वर-साक्षात्कार के लिये शोध-ज्योति को जलाये रखने में अपने समय के अनुरूप शैली में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। सन्तों ने जो उपदेश किये और जो आचरण दिये, वे हमारे शास्त्रों के मूल सिद्धान्तों के अनुरूप थे, किन्तु रूढ़ि-परक कर्म-

भगवती श्री महाराज्ञी



शीतांशु-बालार्क-कृषाणु-नेत्रां,
चतुर्भुजामेण-त्वगासनस्थाम् ।
शङ्खाब्ज-शूलासि-धरां महेशीं,
राज्ञीं भजेऽहं तुहिनाद्रि-रूपाम् ॥

काण्ड को बहुत कुछ समाप्त कर दिया गया। अपने अतीन्द्रिय ज्ञान के कारण सन्तों को अति-मानव माना जा सकता है, जो सभी कोणों में कार्य करने में समर्थ हैं और इसीलिये हम जैसे त्रिकोण-सीमित प्राणियों को कहीं उत्तम ढंग से हमारी जीवन-यात्रा और ईश्वर-साक्षात्कार मार्गों में पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं।

इस सम्बन्ध में तुरन्त ही गुरु नानक, कबीर, मीराबाई, तुकाराम, रामदास, चैतन्य, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, अरविन्द घोष, साईं बाबा, चतुर्भुज सहाय जैसे यशस्वी भागवत पुरुषों (सन्तों) का स्मरण हो आता है। काश्मीर को भी लल्लेश्वरी, रूपभवानी, शैख़ नूर दीन, ज़ैना शाह, रैश पीर, ज़ै काक (ज़नानु ज़ोइ), जीवन साहिब, मिर्ज़ा काक, आफ़-ताब कौल, आनन्द जी, कैलाश कौल, राम जी (शैव दार्शनिक), ज्ञन काक तुफ्ची, प्रसाद जू साहिब, चन्द्र काक बछरु, साहिब कौल, श्यामसुन्दर कौल, मनस राज़दान, मान काक गौज़ा, काका जी, गण मौल, सौबुर शेख, त्रिहगाम बाबा जैसे सन्तों के जाज्वल्यमान समूह को प्राप्त करने का सौभाग्य मिला है। इन सन्तों में से कुछ कर्म-योगी थे और उन्होंने काश्मीर के भाग्य-निर्माण में सक्रिय रूप से भाग लिया।

सन्त-पदवी-धारियों की एक नियमित संस्था रही है और लोग इन सन्तों के पास भीड़ लगा देते थे। सन्तों से कुछ लोग आध्यात्मिक शान्ति (मोक्ष) चाहते थे, किन्तु अधिकतर लोग भौतिक इच्छाओं की पूर्ति या विपत्तियों के निवारण हेतु उनके पास जाते थे।

स्थिति अब बदल गई है। आजकल अच्छे सन्त बहुत ही कम दृष्टिगत होते हैं। कदाचित् वे एकान्त में चले गये हैं।

यदि आप किसी नवयुवक को बतायें कि ईश्वर है, तो सम्भव है कि वह आपका उपहास करे और अविश्वासपूर्वक आपसे कहे कि 'ईश्वर यदि है, तो उसे अर्थात् सीमित त्रिकोणात्मक पंचेन्द्रिय-गम्य ईश्वर को अपनी हथेली पर दिखाइये।' ऐसी दशा में कोई इतना ही कर सकता है कि उस नवयुवक को उन सन्तों के पास भेजे, जो भूत वर्तमान और भविष्य की बात बता सकें। उनकी अलौकिक शक्तियाँ नवयुवकों की कल्पना को उद्बुद्ध कर सकती हैं और ईश्वर में उनकी आस्था पुनः उत्पन्न हो सकती है।

सन्त-पदवी-धारियों की संस्था शीघ्रता से लुप्त हो रही है और निकट भविष्य में लोग आश्चर्य करेंगे कि सन्त लोग किस प्रकार के होते थे, कैसे रहते थे और कैसा आचरण करते थे। इस पृष्ठभूमि के साथ और नैतिकता के हित में मैं इस शताब्दी के काश्मीर के दुर्लभतम सन्तों में से एक भगवान् गोपीनाथ जी का यह संक्षिप्त चरित-चित्र प्रस्तुत कर रहा हूँ, जिन्होंने लगभग ७० वर्ष (१९६८) की आयु में महानिर्वाण प्राप्त किया। लोग उन्हें भगवान् जी या बब (पिता) कहा करते थे क्योंकि बिना किसी भेद-भाव के वे सभी को प्रिय थे।

उनके जीवन के पिछले २२ वर्षों में उनसे सम्बन्धित रहने का अनूठा गौरव मुझे मिला था। श्रीनगर में (वर्ष में ७-८ मास) रहते समय मैं प्रतिदिन उनके पास जाया करता और विनम्रता-पूर्वक उनके सामने ३-४ घण्टे बैठ कर उनके आचरणों को ध्यानपूर्वक देखा करता था। यहाँ वर्णित तथ्य और घटनायें वही हैं, जिन्हें मैंने व्यक्तिगत रूप से देखा या जिनको उन्हें अधिक निकट से जाननेवाले उनके सम्बन्धियों या अन्य शिष्यों ने मुझे बताया। उनके सम्बन्धियों में से सबसे अधिक सूचना



श्री एस० एन० फोतदार, जीवनी के मूल लेखक, श्रीगुरु-चरणों में

भगवान् जी के बचपन के आदि के साथी पण्डित गोविन्द कौल ने, माधव जी सथू ने, जिनके मकान में वे लगभग १० वर्ष रहे और उनकी अपनी बहिन श्रीमती जानकी देवी ने दी है। पण्डित प्राणनाथ कौल, पं० शिबनलाल तुरकी और बहिन जयकिशोरी जी द्वारा, जो सभी भगवान् जी के शिष्य हैं, बहुत ही उपयोगी सूचना संकलित की गई हैं। भगवान् जी के भक्त पं० शंकरनाथ ज़ाड़ू और पं० गोपीनाथ धर ने भी बहुत उपयोगी सूचना दी है। पं० श्री धर जू धर, पं गोपीनाथ मल्ला, पं० मोहन किशन तिकू, पं० श्यामलाल धर और पं० जे० एल० नेहरू यद्यपि उनके सम्पर्क में सीमित रूप में ही रहे, तथापि इन्होंने भी इस योजना को सम्भव बनाने में अपना योग-दान किया है।

काश्मीर के विगत और विद्यमान सन्तों के सम्बन्ध में प्रामाणिक तथ्य बहुत कम सुलभ हैं। ऐसी दशा में यह जीवनी इसलिए प्रकाशित की जा रही है कि हम काश्मीर के इस महान् रहस्यपूर्ण सन्त के जीवन के कार्य-कलापों को भी कहीं भूल न जायें। तत्सम्बन्धी विषयों को निम्नलिखित १४ अध्यायों में विभाजित किया गया है—

अध्याय १ : जयन्ती, महानिर्वाण और वंश-परिचय इसलिए लिखा गया है, जिससे उनके जीवन के तथ्यों और उनके पूर्वजों की पृष्ठ-भूमि का प्रामाणिक विवरण सुरक्षित रहे।

अध्याय २ : अपने प्रारम्भिक जीवन में पारिवारिक परिस्थितियों के कारण और बाद में अपनी इच्छानुसार उन्हें अपना आवास एक स्थान से दूसरे स्थान को परिवर्तित करना पड़ा। अतः जिन स्थानों में वे रहे और जो समय उन्होंने प्रत्येक स्थान में व्यतीत किया, उसका विवरण उनकी आयु और उनकी

साधना के प्रगतिशील स्तरों के अनुसार दिया गया है।

उनकी शिक्षा और नियोजन तथा दीक्षा से सम्बन्धित तथ्य अध्याय ३ में दिए गए हैं।

उनकी साधना की पृष्ठ-भूमि का तारतम्य देने के लिए उनके द्वारा की गई तीर्थ-यात्राओं और प्रत्येक स्थान में उनके कुछ चमत्कारों का वर्णन अध्याय ४ में किया गया है।

उनके क्रिया-कलापों का कुछ बोध कराने के उद्देश्य से उनकी दैनिक चर्या, वेश-भूषा, खान-पान, व्यक्तिगत स्वास्थ्य और उपवास आदि का विवरण अध्याय ५ में दिया गया है।

अध्याय ६ में विवाह और यौन-सम्बन्धी उनके विचारों का विवरण दिया गया है। साधकों की आध्यात्मिक प्रगति पर इस विवरण का बड़ा प्रभाव है।

अध्याय ७ में उनके उदार स्वभाव का उल्लेख है।

अध्याय ८ में सामान्य जनता को भगवान् जी के दर्शन, रोग-निवारण के उनके ढँग और लोगों द्वारा दिए गए उपहारों के प्रति उनकी भावना का विवरण है।

जिन स्थानों में उन्होंने निवास किया, वे उनके जीवन में अपना निश्चित महत्व रखते हैं। अतः साधना की प्रत्येक अवधि और तत्सम्बन्धी मुख्य घटनाओं का वर्णन अध्याय ९ में किया गया है।

अध्याय १० में उनके जीवन के अन्तिम दो वर्षों में लक्षित विचित्रताओं का उल्लेख किया गया है।

अध्याय ११ में उनके महानिर्वाण का विवरण दिया गया है।

अध्याय १२ में देश या हमारे ध्यान में आए व्यक्तियों के लिए किए गए उनके चमत्कारों में से कुछ का वर्णन किया गया

है और वह सामान्यतः जन-समाज के हित से सम्बन्ध रखता है।

अध्याय १३ में उनके दार्शनिक विचारों का उल्लेख है।

अध्याय १४ उनके भूतपूर्व और वर्तमान शिष्यों से सम्बन्ध रखता है।

भगवान् जी का चरित्र-चित्रण करने में मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ, इसका निर्णय मैं पाठकों पर छोड़ता हूँ। यह बात तो तुरन्त ही मान्य की जायगी कि जो महापुरुष निर्गुण ब्रह्म से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं, उनके सम्बन्ध में लिखना सदैव कठिन रहा है, जब तक कि लेखक ने स्वयं एक सीमा तक आध्यात्मिक प्रगति की उपलब्धि न कर ली हो। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, इस प्रकार की अनुभूति के वर्णन-कर्ता तक होने का दावा मैं नहीं करता। तथापि उपलब्ध तथ्यों को सुरक्षित रखने के लिए मैंने निष्ठापूर्वक इस वर्णन को संयोजित करने का प्रयास किया है, अन्यथा ये सब विस्मृति के गर्भ में विलीन हो जाते। अतएव पाठकों से मैं उदारता की अपेक्षा करता हूँ और यदि इस चरितात्मक निबन्ध से पाठकों के मन में ईश्वर-साक्षात्कार के लिए उत्कण्ठा जाग्रत् होने में सहायता मिली, तो मैं अपने को पर्याप्त रूप से पुरस्कृत समझूँगा।

और अधिक सूचना के उपलब्ध होने पर इस जीवनी का परिवर्धित संस्करण निकालने का प्रस्ताव है। यह कार्य निम्न व्यक्तियों से गठित एक समिति को सौंप दिया गया है—

१ श्री मोहन किशन तिकू, बी० ए०, आर्गनाइज़र भगवान् गोपीनाथ जी ट्रस्ट

२ श्री प्राणनाथ कौल, एम० ए०, बी० एड्०, सेक्रेटरी बी० जी० टी०

३ श्री शिबनलाल तुरकी, बी० एस-सी०, ज्वायण्ट सेक्रेटरी बी० जी० टी०

४ बहिन जयकिशोरी जी, एम० एस-सी०, लाइब्रेरियन बी० जी० टी०

समयानुसार इस जीवनी का एक उर्दू-संस्करण भी प्रकाशित किया जायगा। यह कार्य निम्न को सौंपा जायेगा—

१ पण्डित गोपीनाथ मल्ला, वाइस प्रेसीडेण्ट बी० जी० टी०

२ पण्डित जियालाल नेहरू, मैनेजर, बी० जी० टी०

मैं कर्तव्य-च्युत होऊँगा यदि इस जीवनी के प्रस्तुत करने में निम्नलिखित सज्जनों द्वारा दी गई सहायता को सधन्यवाद स्वीकार न करूँ--

१ पण्डित श्रीधर जू धर, प्रेसीडेण्ट बी० जी० टी० ने इस प्रयास को प्रोत्साहन दिया और बहुमूल्य सुझाव दिए।

२ प्रोफेसर प्रेमनाथ काज़ी, अवकाश-प्राप्त प्रिंसिपल, गवर्नमेण्ट कालेज, जम्मू तथा कुछ अन्य सज्जनों ने पाण्डुलिपि का सावधानी से अवलोकन और संशोधन किया।

३ पं० हृदयनाथ कौल, सम्पादक 'रिसर्च त्रिक फ़िलासफ़ी एण्ड कल्चर, पं० पी०एन० नेहरू आफ़ शैविक फ़िलासफ़ी आश्रम (राम आश्रम नाम से विख्यात), श्री लक्ष्मी नृसिंह शास्त्री द्वारा 'कल्याण' में 'शंकराचार्य के अनुसार विष्णु का स्थान' शीर्षक से और श्री राम स्वामी ऐयर द्वारा 'दि भगवद्-गीता बोथ ऐज़ ए मेटाफ़िज़िक्स एण्ड ऐन आर्ट आफ़ लाइफ़' शीर्षक से लिखित लेख, जिनसे कुछ सामग्री प्रस्तुत पुस्तक में उद्धृत की गई है।

४ बी० जी० टी० के पं० प्राणनाथ कौल, पं० एम० के० तिकू ने पाण्डुलिपि को टंकित कराया।

—शंकरनाथ फ़ोतदार

अध्याय-१

जयन्ती और महा-निर्वाण

भगवान् गोपीनाथ जी का जन्म शुभ शुक्रवार १६ हार (आषाढ़), १६५५ (विक्रमी) तदनुसार ३ जुलाई, १८९८ ई० को बाण मोहल्ला, श्रीनगर (काश्मीर) में काश्मीर पण्डित समाज के सर्वाधिक श्रेष्ठ माननीय भान-परिवारों में से एक परिवार में हुआ और चन्दपोरा, श्रीनगर में, जहाँ अपने जीवन के पिछले ग्यारह वर्षों से वे निवास कर रहे थे, मंगलवार २८ मई, १९६८ ई० को सायं ५-४५ बजे उन्होंने महा-समाधि प्राप्त की।

भगवान् जी के पितामह श्री लक्ष्मण जू भान थे, जो जम्मू और काश्मीर रियासत के डोगरा शासन में एक वज़ीर वज़ारत (कलेक्टर) थे। उनके पिता पण्डित नारायण जू भान पशमीना ऊन का व्यापार करते थे किन्तु वे एक "ईश्वर-कोटि" थे, जो अपना अधिकांश समय धार्मिक कर्मों में बिताते थे। उन्होंने अपने पूर्वजों के मकान तथा अन्य सम्पत्तियों का त्याग कर अपनी सौतेली मां को सौंप दिया था।

भगवान् जी की मां श्रीमती हार माली बहुत ही धर्म-निष्ठ महिला थीं। वे पण्डित प्रसाद जू पारिमू की एकमात्र पुत्री थीं, जो स्वयं भी एक रहस्यपूर्ण सन्त थे और जिन्हें लोग "जड़ भरत" कहा करते थे। उनके कोई सन्तान नहीं हुई और उन्होंने एक बालक को गोद लिया। इसके कुछ ही बाद, जब कि वे तुलमुला में क्षीर-भवानी अस्थापन में समाधि में थे,

राज्ञी भगवती ने उन्हें दर्शन दिए और उन्हें इस बात के लिए झिड़की दी कि उन्होंने बालक को गोद लिया क्योंकि वे स्वयं उनके घर जन्म लेनेवाली थीं। शीघ्र ही बाद में उनके यहाँ पुत्री का जन्म हुआ और यही भाग्य-शालिनी कन्या भगवान जी की मां बननेवाली थी।

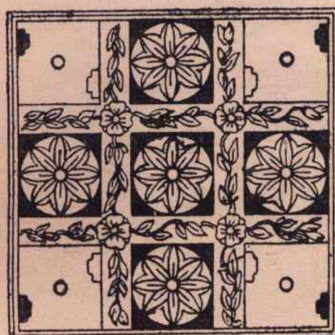
भगवान् जी के दो भाई थे। एक उनसे बड़े थे, नाम था पण्डित गोविन्द जू भान। वे कस्टम्स और एक्साईज़ विभाग में नियुक्त थे और उनकी मृत्यु १९४६ ई० में हुई। वे अविवाहित रहे और उन्होंने भगवान् जी का पालन-पोषण किया।

भगवान् जी के छोटे भाई पण्डित जियालाल जम्मू एवं काश्मीर राज्य के पी० डब्लू० डी० में एक ड्राफ़्ट-मैन थे। सथू, श्रीनगर के निवासी काक-परिवार ने उन्हें गोद लिया था। वे विवाहित थे किन्तु सन्तान-हीन रहे। वे भी एक "ईश्वर-कोटि" थे और साधुओं तथा अन्य गरीब लोगों के प्रति बहुत ही उदार थे। उनकी मृत्यु १९६४ ई० में हुई।

भगवान् जी को दो बहिने थीं। उनसे वड़ी बहिन श्रीमती देव माली दो पुत्रियों को जन्म देने के बाद अल्प वय में ही विधवा हो गई थीं। इन्हीं की मृदु देख-रेख ने साधना की तूफ़ानी अवधि में भगवान् जी का संरक्षण किया। उनके जीवन के अधिकांश काल में ये उनके साथ ही रहीं और उनके भोजन, वस्त्रादि की व्यवस्था करती रहीं। इनकी मृत्यु १९६५ ई० में हुई। श्रीमती देव माली की दो पुत्रियां थीं। बड़ी पुत्री श्रीमती कमला जी एक पुत्र और दो पुत्रियों को जन्म देकर दिवंगत हुईं। इन्हीं के मकान में भगवान् जी लगभग ग्यारह वर्ष चन्द-पोरा में रहे और महा-निर्वाण प्राप्त किया। श्रीमती देव माली की छोटी पुत्री चान्दा जी जीवित हैं। कमला जी के मकान में

आने से पूर्व भगवान् जी इनके मकान में लगभग १० वर्षों तक रेशी मोहल्ला, श्रीनगर में रहे। इस अवधि में तथा जब भगवान् जी रंग टेंग, श्रीनगर में अपनी साधना की गहन अवधि (१९३०-३७) में रहे, इन्होंने भगवान् जी की बड़ी सेवा की।

भगवान् जी की छोटी बहिन श्रीमती जानकी देवी दो पुत्रों और दो पुत्रियों को जन्म देकर अल्प वय में ही विधवा हो गईं। वे भी विशिष्ट अवसरों पर भगवान् जी की सेवा करती रहीं और उनकी बड़ी भक्त थीं। वे आज भी जीवित हैं।



गृह-स्वामी का नाम	श्रीनगर के स्थान का नाम	प्रत्येक गृह में रहने की अवधि	प्रत्येक अवधि के अन्त में भगवान् जी की आयु	वर्ष (ईस्वी)
१. पण्डित शिव जी खैबरी	बाण मुहल्ला	१ वर्ष	११ वर्ष	१९०९
२. ,, केशव जो नगरी	शालायार	३ ,,	१४ ,,	१९१२
३. ,, कैलास जू भान	राजवेरी कदल	१½,	१६ ,,	१९१३
४. ,, प्रसाद जू पारिमू	स्थकि डाफ़र	७ ,,	२३ ,,	१९२०
५. ,, केशव जू दर	सफा कदल	३ ,,	२६ ,,	१९२३
६. ,, पुरोहित टिक बायू	रंग टेंग	६ ,,	३२ ,,	१९२९
७. ,, दीनानाथ बोट्टा	रंग टंग	७ ,,	३९ ,,	१९३६
८. ,, नील कौल सर्राफ	डलहसनयार	१० ,,	४९ ,,	१९४६
९. ,, माधव जू साथू	रेशो मुहल्ला	१० ,,	५९ ,,	१९५६
१०. ,, श्यामलाल मल्ला	चन्द पोरा	११ ,,	७० ,,	१९६८



श्री भगवान् गोपीनाथ जी

अध्याय-२

प्रारम्भिक जीवन और विविध स्थानों की यात्रा

भगवान् जी का जन्म बाण मोहल्ला, श्रीनगर में उनके पूर्वजों के मकान के निचले खण्ड के एक कमरे में हुआ था। उक्त मकान को बने यद्यपि ७५ वर्ष बीत चुके थे, तथापि इमारत आज भी अच्छी दशा में है और पिछले वर्षों में एक मंजिल उसमें और जुड़ गई है। उनका प्रारम्भिक बचपन इसी मकान में व्यतीत हुआ। उनके पिता पण्डित नारायण जू भान द्वारा अपने मकान तथा अन्य सम्पत्तियों का त्याग करने के बाद और जब उनकी (भगवान् जी की) आयु लगभग १० वर्ष थी, उनके परिवार को विभिन्न स्थानों को स्थानान्तरित होना पड़ा। उनकी छोटी बहिन श्रीमती जानकी देवी द्वारा प्रदत्त विवरणों से प्रतीत होता है कि उनके परिवार को पृष्ठ ४ पर अंकित स्थानों में निर्दिष्ट अवधि तक रहना पड़ा। यह तालिका उनके जीवन की घटनाओं का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करने के लिए दी गई है।

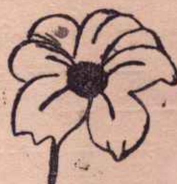
भगवान् जी की मां का, जब वे स्थान २ पर लगभग १२ वर्षीय बालक थे, निधन हो गया, और उनके पिता, जब वे स्थान ६ पर २६ से ३२ वर्ष की आयु के मध्य थे, नहीं रहे।

जब वे स्थान ३ पर थे तब उन्होंने सर्व-प्रथम काम-काज करना स्वीकार किया, जहां (स्थान ३ पर) वे लगभग ३ वर्ष रहे।

स्थान ४ व ५ पर रहते समय उन्होंने एक किराना दूकान पहले चायदव में प्रारम्भ की, फिर उसे सेकि डाफ़र, श्रीनगर ले गए।

स्थान ६ पर वे अपनी साधना में व्यस्त रहे, किन्तु समय-समय पर पारिवारिक बातों पर भी ध्यान देते रहे।

स्थान ७ पर उन्होंने सभी का त्याग कर दिया। यह उनकी गहरी साधना का काल था, जो उनके जीवन के अन्त तक चलती रही।



अध्याय-३

शिक्षा

विभिन्न सूत्रों द्वारा संकलित सूचना से हम यह निश्चित करने में समर्थ हुए हैं कि भगवान् जी ने मिडिल स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की थी। उन दिनों का "मिडिल"-स्तर आज के "मैट्रिकुलेशन"-स्तर के समान है। अपनी आनन्दावस्था में वे कभी-कभी सुन्दर अंग्रेज़ी-वाक्यों का उच्चारण किया करते थे। वे देवनागरी और शारदा दोनों लिपियों में संस्कृत पढ़ और लिख लेते थे। उर्दू और फारसी भाषाओं पर भी उन्होंने अधिकार प्राप्त किया था। अपने बचपन के काल से ही उन्होंने संस्कृत के प्रति अत्यधिक रुचि दिखाई थी और प्रभावशाली ढँग से सुन्दर संस्कृत श्लोकों को वे अपनी स्मृति से सुनाया करते थे। अपने प्रारम्भिक जीवन में बिना किसी सहायता के उन्होंने भवानी सहस्रनाम, इन्द्राक्षी, पंचस्तवी, विष्णु सहस्रनाम, महिम्न स्तोत्र, शिव स्तोत्रावली और काश्मीर के सन्तों के "वाक" का पाठ किया था। बाद के अपने जीवन में, जब कभी वे अनुकूल भाव में होते थे, उक्त कृतियों के श्लोकों का उच्चारण किया करते थे। श्रीमद्भगवद्गीता में उनकी बड़ी रुचि थी, जिसकी प्रति उनके जीवन के अन्त तक बराबर उनके सामने रही। किन्तु उनकेजीवन के पिछले ३० वर्षों में किसी ने उन्हें इन पुस्तकों को पढ़ते नहीं देखा। कदाचित् उन्होंने उपर्युक्त सभी पुस्तकों को अपने प्रारम्भिक जीवन में याद कर लिया था।

यह ज्ञात नहीं है कि उन्होंने औपनिषद् विचारधारा या त्रिक शैव दर्शन पर, जिसके लिए काश्मीर सारे भारत

में प्रसिद्ध है, कोई पुस्तक पढ़ी थी या नहीं। यह अवश्य एक तथ्य है कि अपने प्रारम्भिक जीवन में वे विद्वानों और सन्तों के सत्संगों में जाया करते थे जहाँ प्रायः वेदान्त तथा काश्मीर शैव मत पर विवेचना बहुत ही प्रचलित थी। कदाचित् उन्होंने इन पुस्तकों का भी अध्ययन किया था।

भगवान् जी ने अपनी प्रारम्भिक युवावस्था से ही अपनी जीविका के लिए कोई नियोजन स्वीकार करने में प्रकट रूप से उदासीनता दिखाई थी। अपने माता-पिता और सम्बन्धियों के दबाव तथा अपनी विषम परिस्थितियों के कारण अपने जीवन के प्रारम्भ में उन्हें नियोजन स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ा था। प्रारम्भ में वे अपनी माता के चाचा के पश्मीना व्यापार में, जो उन दिनों काश्मीर का उन्नतिशील उद्योग था, योगदान करते रहे। उनका पहला नियमित नियोजन श्रीनगर में माधोराम स्टीम प्रेस में एक कम्पोजीटर के रूप में हुआ। भगवान् जी के नियुक्त होने के तुरन्त बाद ही प्रेस के व्यापार में उन्नति हुई। तीन वर्ष बाद जब उन्होंने काम छोड़ना चाहा, तो प्रेस-मालिक ने उनसे काम करते रहने का अनुरोध किया, किन्तु उन्होंने उसे यह बताते हुए अस्वीकार कर दिया कि "तुम्हारे 'दास दारज़' (पूर्व जन्म के सम्बन्ध) मुझसे समाप्त हो गए हैं।" उन्होंने काम छोड़ दिया।

इसके बाद उन्होंने चायदब में एक किराना दूकान प्रारम्भ की और शीघ्र ही बाद में अपना व्यवसाय सेकि डाफर, श्रीनगर में स्थानान्तरित कर दिया। यह इमारत अब भी विद्यमान है। इस काम को कदाचित् उन्होंने इसलिए चुना था क्योंकि इसमें उन्हें साधना के लिए अधिक समय मिलता था। प्रतीत होता है कि किराना दूकान में उन्होंने लगभग १० वर्ष अर्थात् १९२५

ई० तक कार्य किया। यद्यपि वे अपनी दूकान में बठे रहते थे, तथापि अधिकांश समय वे ध्यान में मग्न रहते थे और कुछ रातें भी वे दूकान में ही व्यतीत किया करते थे।

दूकान छोड़ देने के बाद वे गहरी आध्यात्मिक साधना में दृढ़ सङ्कल्प और अनन्य निष्ठा के साथ जीवन को बाज़ी लगाकर संलग्न हो गए। जिन लोगों ने उन्हें उनकी किराना दूकान में देखा था, और जो आज भी जीवित हैं, उनका कथन है कि वे बहुत कम बात करते थे और सदैव विचार-मग्न प्रतीत होते थे।



अध्याय—४

दीक्षा

यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि भगवान् जी के गुरु वास्तव में कौन थे। उनके कुछ सम्बन्धियों के मत से उन्होंने अपने पिता पण्डित नारायण जू भान से दीक्षा ली थी, किन्तु इसका समर्थन न तो उनकी बहिन ने किया और न उन लोगों ने जो उनके प्रारम्भिक जीवन में उनके साथ रहे हैं। उनकी छोटी बहिन का मत था कि उन्होंने कदाचित् एक काश्मीरी सन्त स्वामी बालक जू काव से दीक्षा ली थी। इसका भी समर्थन किसी के द्वारा नहीं हुआ। अपनें महानिर्वाण के कुछ वर्ष पूर्व भगवान् जी ने अपनी स्वगतोक्तियों में से एक उक्ति में उन्हें "हतो बालक कावा" अर्थात् "अरे, बालक कावा" कह कर सम्बोधित किया था। यदि वे उनके गुरु होते, तो इस प्रकार उन्हें वे सम्बोधित न करते। कभी-कभी वे बोदगीर, श्रीनगर के प्रसिद्ध सन्त स्वामी नारायण जू भान के पास भी जाया करते, थे, किन्तु उनके केवल एक ही शिष्य—मनोगाम के स्वामी कश काक थे। अतः भगवान् जी का उनका शिष्य होना सम्भव नहीं है।

संकलित प्रमाणों से अब प्रकट हुआ है कि भगवान् जी प्रायः बहुधा करफल्ली मोहल्ला, श्रीनगर के स्वामी ज़न काक तुफ्ची के घर जाया करते थे, जो एक महान् सन्त थे। अपने बाद के जीवन में स्वामी ज़न काक स्वामी आफ़ताब जू वांगनू, बाबापुर, श्रीनगर के घर चले गए थे। यह निश्चित है कि भगवान् जी स्वामी ज़ाना काक के घर, जब वे करफल्ली

मोहल्ले में रहते थे, जाया करते थे और जब वे स्वामी आफ़-ताब जू वांगनू के घर में रहने लगे, तब वे बहुधा उनके पास जाते थे। प्रति शनिवार की रात्रि में वहाँ उनके मकान में एक "भजन-मण्डली" होती थी और भगवान् जी अवश्य ही इन मण्डलियों में उपस्थित रहते थे, जहाँ केवल गुरु गीता और वाक् का पाठ होता था।

स्वामो जन काक तुफ़ची के देहावसान के बाद स्वामो आफ़ताब जू प्रति वर्ष एक वृहत् यज्ञ स्वामी जन काक की पुण्य वार्षिक तिथि पर आयोजित किया करते थे, जिसमें वर्षों तक भगवान् जी भाग लेते रहे। इस अवसर पर वे जन काक जी के अन्य शिष्यों के साथ सभी प्रकार के कार्य यहाँ तक कि बर्तन धोने और खाना पकाने का भी काम किया करते थे। यह तभी सम्भव था, जब या तो स्वामी जन काक या उनके शिष्य स्वामी आफ़ताब जू वांगनू उनके गुरु रहे हों। बडगाम के पण्डित महेश्वरनाथ त्रिसल का, जो उनके प्रारम्भिक जीवन से सम्बन्धित रहे हैं, यह कथन है कि स्वामी आफ़ताब जू वांगनू उनके गुरु थे। एक उदाहरण श्री त्रिसल ने उस अवसर का दिया है जब स्वामी आफ़ताब जू ने उन्हें निम्न प्रकार सम्बोधित किया—

"गोपिया, क्या तुमने दर्शन पाए हैं ?"

भगवान् जी ने उत्तर दिया कि "मुझे दर्शन मिल रहे हैं।"

इसका तात्पर्य यह था कि यह एक सतत क्रिया थी और उन्हें बराबर दर्शन मिल रहे थे।

श्री त्रिसल से यह पूछने पर कि भगवान् जी किसके दर्शन पा रहे थे, उन्होंने बताया कि अपने गुरुदेव के।

आफ़ताब जू वांग्नू के छोटे भाई पण्डित बल जी वांग्नू से

पूछ-ताछ करने से यह सूचना मिलो कि स्वामी ज़न काक भगवान् जो के गुरु थे और स्वामो आफ़ताब जू उनके गुरु-भाई थे। मुझे यही स्थिति सही प्रतीत होती है।

स्वामी ज़न काक तुफ़चो के शिष्यों में से कुछ का, जो आज भी विद्यमान हैं, कथन है कि भगवान् जी स्वामी ज़न काक के ज्ञात शिष्यों में नहीं थे। यह सम्भव है कि उन्होंने उन्हें गुप्त रूप से दीक्षा दी हो। उक्त प्रमाण से यह तथ्य इंगित होता है कि सम्भव है कि स्वामो ज़न काक उनके गुरु रहे हों। भगवान् जी अपने बचपन से ही अत्यन्त भावुक थे। बहुत सम्भव है कि वे इन सन्तों के पास, जो कुछ सम्भव हो, सीखने के लिए जाते रहे हों, किन्तु दीक्षा न ली हो। भगवान् जी के महानिर्वाण के कुछ वर्षों पूर्व एक भक्त ने उनसे यह पूछने का साहस किया था कि 'आपके गुरु कौन हैं ?' इस पर उन्होंने अपने सामने एक ओर पड़ी भगवद्गीता की ओर संकेत किया और कहा कि 'भगवद्गीता के सात सौ श्लोकों में से एक किसी का गुरु हो सकता है और वास्तव में ईश्वर, जो सत् आत्मा है, व्यक्ति का गुरु है।'

काश्मीर के पिछले सभी सन्तों में से केवल एक उन्हीं को उनके जीवन-काल में ही 'भगवान्' कहकर सम्बोधित किया गया और लोग उन्हें 'बब' अर्थात् पिता भी कहते थे।

उन्होंने चित् की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त कर लिया था और परमात्मा में तल्लीन रहा करते थे। अतः इसमें कोई असामान्य बात नहीं है कि उन्हें भगवान् रूप में माना गया।

काश्मीर के दो अन्य रहस्यपूर्ण दिव्य सन्त लल्ला दायद् और रूप दायद् को लल्लेश्वरी और रूप-भवानी नामों से सम्बोधित किया गया, किन्तु उन्हें यह स्थिति उनके देहावसान के बाद प्राप्त हुई, जब कि भगवान् जी अपने जीवन-काल में ही भगवान् के अवतार के रूप में प्रख्यात हो गए थे।





श्री महागणेश (गणपतयार मन्दिर, श्रीनगर, कश्मीर)

अध्याय—९

देव-स्थानों की यात्रा

भगवान् जी ने काश्मीर घाटी को कभी नहीं छोड़ा किन्तु घाटी के विविध देव-स्थानों में वे थोड़े समय या अधिक समय तक निवास करने के लिए जाया करते थे। भगवान् जी जिन देव-स्थानों में गए, उनकी सूची और उनसे सम्बन्धित कुछ रोचक घटनाओं का विवरण नीचे दिया जाताहै —

१ हारि पर्वत, श्रीनगर पर श्री शारिका भगवती का अस्थापन

यह अस्थापन श्रीनगर के उत्तर में एक पहाड़ी के ऊपर स्थित है। हिन्दू लोग वहाँ तड़के प्रातःकाल पहाड़ी के चारों ओर सामान्यतः निर्धारित परिक्रमा करने तथा पहाड़ो के ऊपर बीच चढ़ाई पर निर्मित मुख्य चक्रेश्वर मन्दिर के सामने एक खुले स्थान में स्थित देवी-आंगन में पूजा करने के लिए जाया करते हैं। भगवान् जी इस अस्थापन में कभी तड़के प्रातःकाल जाते थे, या कभी अपराह्न के बाद और कभी वहाँ के एक पुजारी पण्डित सालिग्राम के घर में रातें व्यतीत किया करते थे। एक वर्ष वे इस अस्थापन में ६ महीने ठहरे। इस अवधि में उन्होंने वहीं के एक पुरोहित श्री राम जू के मकान में निवास किया था जो आज भी जीवित हैं।

डलहसनयार मुहल्ले में निवास (१९३७-१९४६) करते समय एक बार उन्होंने एक भक्त से उक्त अस्थापन में अपने साथ चलने को कहा। भक्त ने इस शर्त पर चलना स्वीकार

किया कि उसे शारिका भगवती के दर्शन मिल जाएं। भगवान् जी ने उसकी शर्त मान ली। जब वे और उक्त भक्त देवी के आंगन में एक झोपड़ी में बैठे थे एक बहुत ही छोटी और सुन्दर कन्या आई और भक्त की गोद में बैठ गई। भक्त चकित हो गया और विस्मय में इतना बेसुध हो गया कि देवी-दर्शन की अपनी भावना को भूल ही गया और भगवान् जी के कहने से पहले ही जो मिठाई उसने खरीद ली थी उसमें से कुछ मिठाई उसने उस कन्या को खिलाई। जैसे ही वह कन्या जाने के लिए उठी भगवान् जी ने भक्त को उसके पीछे जाने का संकेत किया, किन्तु वह यह देखकर चक्कर में पड़ गया कि कन्या अचानक ही अदृश्य हो गई थी। भक्त अपनी सुध-बुध भूल गया था और उस समय जैसा उसका आध्यात्मिक स्तर था उसी के अनुरूप उसने देवी के दर्शन प्राप्त किए। कदाचित् वह देवी के सूक्ष्म स्वरूप के दर्शन को सहन नहीं कर सकता था अतः उसने मानव-रूप में उनके दर्शन प्राप्त किए।

जम्मू एवं काश्मीर के वन-विभाग में काम करनेवाले पण्डित शामलाल राज़दान द्वारा सूचित एक अन्य घटना का भी विवरण यहाँ दिया जाता है—

१९४४ (या १९४५) के वसन्त-काल में, जब बादाम के पुष्प पूर्ण रूप से खिल चुके थे, भगवान् जी के समक्ष बैठे हुए आठ सेवकों के एक समूह ने उनसे अपने साथ हारि पर्वत देवी-पीठ को, जिसके आंगन में बादाम के उद्यान हैं, चलने की प्रार्थना की। उन आठ लोगों में से एक पण्डित नील कौल सर्राफ से भगवान् जी ने पूछा कि 'तुम भी साथ चलोगे ?' इस पर पण्डित नील कौल ने कहा कि 'देवी तो यहाँ भी हैं। हमें वहाँ क्यों जाना चाहिए ?' फिर भी उन्हें किसी प्रकार

राजी किया गया और भगवान् जी को लेकर नौ व्यक्तियों का दल लगभग १२ बजे मध्याह्न हारि पर्वत के लिए चल पड़ा। उन लोगों ने काठी दरवाजे के निकास द्वार से पीठ-स्थान में प्रवेश किया और मुख्य शारिका भगवती पीठ के प्रांगरण में स्थित पोखरीबाल मन्दिर में पहुँचे जहाँ एक झरना भो विद्यमान है। जैसे हो उन्होंने बाहरी लकड़ी का द्वार खोला, उन्होंने लगभग ५ वर्ष की एक छोटी कन्या को अकेले एक लकड़ी से चिनार की झड़ी हुई पत्तियों से खेलते हुए देखा। उन लोगों ने भीतरी द्वार में प्रवेश किया और पीठ के भीतर एक लकड़ी के फर्श पर बैठ गए। भगवान् जी ने पण्डित नील कौल से उक्त कन्या को पीठ के भीतर लाने को कहा। जैसे ही पण्डित नील कौल उसे लाए, भगवान् जी ने उसे अपनी गोद में बिठा लिया और उसे 'नदर्य म्वंज़ि' (कमल-पुष्पों के नालों से बना एक नमकीन पदार्थ) खिलाने लगे। यह पदार्थ उन्होंने एक आदमी से देवी आंगन से, जहाँ हलवाई की दूकानें थीं, तभी मँगवा लिया था जब वे लोग पीठ से काफी दूर ही थे। उसे खिला लेने के बाद भगवान् जी ने पण्डित नील कौल से उस कन्या को वापस पहुँचा देने को कहा। भीतरी द्वार के बाहर आने के बाद वह तेजी से आगे बढ़ी और ग़ायब हो गई। पण्डित नील कौल यह सोचते हुए वापस आए कि यह कोई असाधारण बात नहीं है। नमकीन चाय पोने के बाद यह दल वापस चला। मार्ग में जब वे काठी दरवाजे से बाहर 'निकले, तब पण्डित नील कौल ने भगवान् जी से व्यंग्य-पूर्ण स्वर में कहा कि 'क्या आपने मुझे देवी के दर्शन करा दिए हैं ?' भगवान् जी ने उत्तर दिया कि 'क्या तूमने देवी को नहीं देखा है, जिसे तुम हम लोगों के साथ बैठने के लिए बुला लाए थे ? क्या उसे मैंने 'नदर्य म्वंजि' नहीं खिलाया और क्या तुम

मेरे कथनानुसार उसे वापस पहुँचाने नहीं गए थे ?' पण्डित नील कौल को स्थिति समझ में आ गई और वे मूर्छित होकर गिर पड़े। कठिनाई के साथ दल के लोग उन्हें घर तक ला पाए । उन्हें मूर्छा इसलिए आई क्योंकि उन्हें इस बात से गहरी चोट लगी कि जब देवी ने उन्हें अपने दर्शन दिए तब वे उन्हें पहचान नहीं पाए ।

२ तुलमुला में खीर भवानी नाम से प्रसिद्ध राज्ञी भगवती का अस्थापन

यह स्थान श्रीनगर से लगभग १६ मील उत्तर में स्थित है। अनेक वर्षों की अवधि में भगवान् जी ३ या ४ मास इस मन्दिर के पास व्यतीत किया करते थे। मन्दिर के सन्निकट वे एक झोपड़ी में रहते, अपनी धूनी प्रारम्भ करते और जितने समय वहाँ रहते, अपनी समाधि में सारे समय तल्लीन रहते। पवित्र झरने तक वे बहुत ही कम जाते, अपितु अपनी चिलम पीते हुए अपनी झोपड़ी में रहते और अपनी धूनी में समय-समय पर हवन करते रहते या कभी अपना भोजन पकाते रहते और दूसरों को भी भोजन कराया करते थे। लोगों की भीड़ उनके पास जुट जाती, किन्तु वे अपने आत्म-साक्षात्कार तथा परम तत्व के चिन्तन में मग्न रहते थे ।

राज्ञी भगवती का एक धर्मात्मा भक्त, जो देवी के दर्शनार्थ जाया करता था, भगवान् जी के आचरण को देखकर आश्चर्य में पड़ गया क्योंकि वे देवी के झरने पर प्रार्थना करने या फूल अथवा दूध चढ़ाने कभी नहीं गये। यह भक्त मूर्छा में पड़ा और उसने देखा कि राज्ञी भगवती एक भव्य सिंहासन पर विराजमान हैं और भगवान् जी भी उनके पास अपनी चिलम के सहित बैठे हैं।

खीर भवानी में रहते समय उनकी भेंट एक सन्त नील बब से हुई। मन्दिर से लौटने पर भगवान् जी और उनके तथा नील बब के एक भक्त ने दुदरहोम नामक स्थान पर विश्राम किया। नील बब भगवान् जी के बहुत पास बैठे और उन्हें परेशान करते रहे क्योंकि वे अपनी कुहनी से उन्हें बराबर कोंचते रहे, किन्तु भगवान् जी ने कुछ नहीं कहा। दुदरहोम से श्रीनगर को जाते समय मार्ग में उक्त भक्त ने भगवान् जी से पूछा कि 'नील बब अपनी कुहनी से आपको क्यों कोंच रहे थे ?' इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि 'यदि कोई सफल होता है तो दूसरे सन्त ईर्ष्या करते हैं।'

३ खि़व में ज्वालामुखी पीठ

यह पीठ श्रीनगर से १६ मील दक्षिण-पूर्व में एक झरने के साथ स्थित है। झरने में लोग स्नान करते हैं और मन्दिर पहाड़ी पर है। अपने प्रारम्भिक जीवन में भगवान् जी इस पीठ में प्रति वर्ष ३ या ४ दिनों के लिये आया करते थे।

१९३७-४७ की अवधि में एक अवसर पर वे अपनी बड़ी बहिन और अन्य भक्तों के साथ इस पीठ में गये थे। भोजन के समय उन्होंने लगभग ५० व्यक्तियों को खाने के लिये बैठा दिया। यह देखकर उनकी बहिन घबरा गईं क्योंकि भोजन पकाने के पात्र में केवल ५ या ७ लोगों के लिये चावल था और इतने अधिक लोगों को उससे कैसे खिलाया जा सकता था ? भगवान् जी ने उनसे कहा कि 'डेगची में से पका हुआ चावल निकालते समय चावल निकाल कर हर बार डेगची को ढंक दो।' यह देखकर सभी को आश्चर्य हुआ कि डेगची से सभी पचासों आमंत्रितों को चावल दिया गया और फिर भी उसमें थोड़ा चावल शेष रह गया।

४ भद्रकाली-पीठ

१९६२ में कुछ समय खीर भवानी में व्यतीत करने के बाद, भगवान् जी भद्रकाली-पीठ को गये। यह पीठ श्रीनगर से लगभग ५५ मील उत्तर हंदवारा तहसील में एक जंगल में है। पीठ के नीचे एक खुले भू-भाग में उन्होंने अपनी धूनी प्रारम्भ की। पीठ उन्नत भूमि पर स्थित है। अपनी बहिन और स्वामी अमृतानन्द को छोड़कर अपने सभी भक्तों को उन्होंने यह कह कर वापस भेज दिया कि 'उत्तर (तिब्बत की ओर) से आनेवाली तूफानी हवा (अर्थात् आध्यात्मिक उपद्रव की ऊर्मियों) से तुम लोग उड़ जाओगे।' इस घटना के तुरन्त बाद ही चीनी आक्रमण का आरम्भ हुआ था।

५ ज्येष्ठा भगवती पीठ

यह पीठ मुख्य नगर (श्रीनगर) से लगभग ३ मील दूर गुलाब भवन पैलेस नामक स्थान के निकट स्थित है। भगवान् जी इस पीठ पर जाया करते और दो या तीन रात्रियाँ प्रति बार वहाँ व्यतीत किया करते थे। एक बार शीत-काल में, जब कि बर्फ गिर रही थी, वे एक भक्त के साथ रात्रि में १० बजे इस पीठ की ओर चले। स्वर्गीय महाराजा हरिसिंह के आदेशानुसार इस पीठ को जानेवाली सड़क पर काँटेदार तार लगा दिये गये थे जिससे पीठ को जानेवाला यह छोटा रास्ता बन्द हो गया था। वे और भक्त कांटेदार तार में से रेंगकर गये और उन्होंने कहा कि 'महाराजा को जाना होगा'। इस घटना के कुछ ही वर्षों बाद १९४७ में महाराजा ने काश्मीर का त्याग कर दिया।

उनके साथ जानेवाले भक्त ने लगभग ४ बजे प्रातःकाल, जब कि वे पञ्चस्तवी के अध्याय ४ के पाठ में तल्लीन थे,

ज्येष्ठा भगवती के दर्शन कराने की उनसे प्रार्थना की। इस पर उन्होंने भक्त से खड़े होने और देवी-प्रताभ की ओर देखने को कहा। भक्त ने देखा कि प्रताभ में से अनेक सूर्यों का उज्ज्वल प्रकाश निकल रहा है। भगवान् जी ने तुरन्त ही भक्त से बैठ जाने को कहा अन्यथा वह अन्धा हो जाता।

इस पीठ पर सामान्यतः आमिष नैवेद्य हल्दी के साथ उबाले चावल (उसे पीला बनाने के लिये) के साथ चढ़ाया जाता है। कोई दल ऐसा ही नैवेद्य पीठ पर लाया था। पूजा के बाद इसका कुछ प्रसाद भगवान् जी तथा औरों को दिया गया। इसी समय एक साधु इस पीठ पर आया और वह वहाँ उपस्थित सभी लोगों को आमिष चढ़ाने और उसे ग्रहण करने के कारण बुरा-भला कहने लगा। भगवान् जी नम्र स्वभाव के थे और कभी किसी पर क्रोध नहीं करते थे, किन्तु इस अवसर पर वे बहुत रुष्ट हो गये और उन्होंने उक्त साधु को यह शाप दे दिया कि 'पयनय शुतुलबुढ़' अर्थात् 'तुम्हें शीतला हो जायँ।' इसके एक घण्टे बाद उक्त साधु को ज्वर हो आया और कुछ घण्टों बाद उसके शरीर में चेचक निकल आई। साधु को पश्चात्ताप हुआ और उसने क्षमा माँगी। भगवान् जी ने उसे तुरन्त पीठ छोड़कर चले जाने को कहा और उसे सान्त्वना दी कि 'कुछ ही दिनों में तुम ठीक हो जाओगे।'

६ गुप्त-गंगा

यह देव-स्थान श्रीनगर से लगभग ६ मील दूर निशात बाग़ के पास स्थित है। १६४६ के वर्ष में भगवान् जी ने इस स्थान में लगभग ६ मास व्यतीत किये। सामान्यतः वे प्रति वर्ष इस स्थान पर केवल दो या तीन दिन बिताते थे। इस स्थान में बड़े लकड़ी के कुन्दों का प्रयोग कर अपनी धनी को एक नियमित

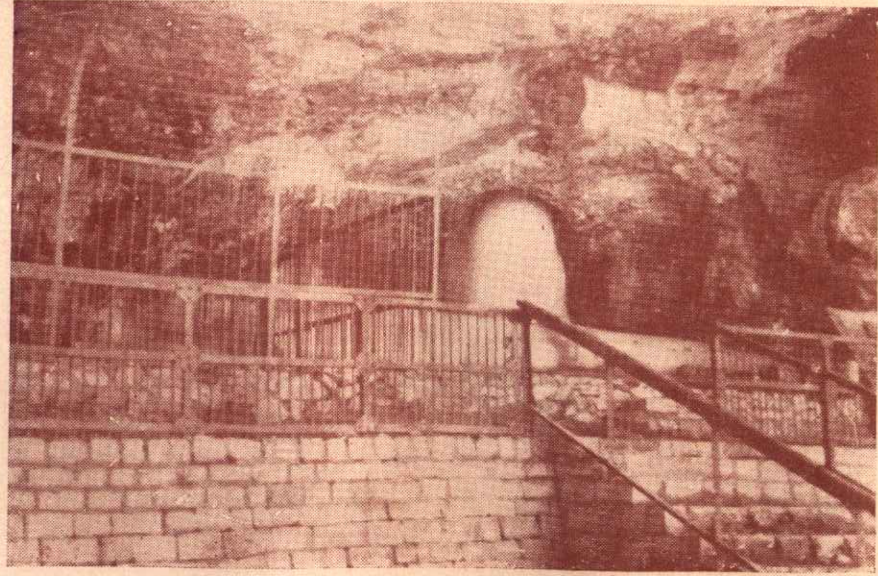
रूप से जलाने में वे बहुत समय लगाते थे। एक प्रसिद्ध महिला सन्त राधा देवी उनसे मिलने इस स्थान पर आई थीं। इस सम्मिलन में क्या हुआ, इसका विवरण अध्याय ११ में दिया गया है।

७ बटमालू, श्रीनगर, में तुष्कराज भैरव

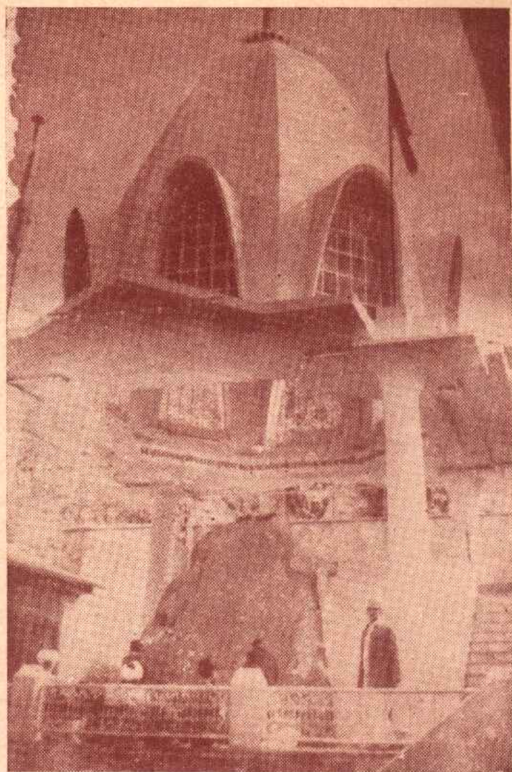
भगवान् जी इस मन्दिर में प्रति वर्ष दो या तीन दिन ठहरा करते थे। भूत-काल में यह महान् सन्तों और साधुओं का निवास-स्थान रहा है। इसी कारण यह एक जाग्रत् स्थान है। भगवान् जी इस स्थान को बहुत चाहते थे और कहा करते थे कि 'यह एक ऐसा स्थान है जहाँ व्यक्ति को रहना चाहिये।' कदाचित् इस स्थान में साधकों के आध्यात्मिक विकास के लिये उचित स्फुरण प्राप्त होते हैं।

८ अमरनाथ की तीर्थ-यात्रा

१६४६ के वर्ष में भगवान् जी श्रावण पूर्णिमा के दिन श्रीअमरनाथ जी के दिव्य दर्शनार्थ अपनी बहिन और अनेक भक्तों के साथ (कुल १३ व्यक्ति) गये। यह दल पहलगाम तक, जो अब एक प्रसिद्ध स्वास्थ्यदायक स्थल है, बस द्वारा गया। पहलगाम से पहाड़ो प्रदेश होकर अमरनाथ जी की पवित्र गुफा तक उन्हें ले जाने के लिए टट्टुओं की व्यवस्था की गई। अपने लिये निर्धारित टट्टू पर वे बिलकुल ही नहीं चढ़े, न गुफा तक की यात्रा के लिये और न उससे वापिस आने के लिये। उन्होंने अपनी बहिन को भी टट्टू पर चढ़ने से मना किया किन्तु उन्होंने आज्ञा नहीं मानी और कुछ ही दूर आगे वे टट्टू पर से गिर पड़ीं। फलतः वे भी गुफा तक पैदल गईं और पैदल ही वापस आईं।



श्री अमरनाथ जी



श्री शारिका भगवती (हारि पर्वत, श्रीनगर, कश्मीर)

मार्ग में चन्दनवारी में यह दल मूसलाधार वर्षा और तूफ़ान में फँस गया जिससे आगे बढ़ना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया। दल के सदस्यों में से अधिकांश ने पहलगाम, जहां से यात्रा आरम्भ हुई थी वापिस लौटने का सोचा। भगवान् जी पत्थर की एक समतल शिला तक गये और वहां अपना मुख नीचे किये लेटे रहे। वर्षा से वे लथ-पथ हो गये। कुछ देर बाद वे आये और उन्होंने घोषित किया कि 'अब वर्षा बिलकुल न होगी।' शीघ्र ही बाद में वर्षा रुक गई और दल बराबर धूप के मौसम में आगे बढ़ता गया। दिव्य गुफा में और उसके बाहर वे परमानन्द में थे और केवल एक बात उनके श्रीमुख से निकली कि 'भगवान् शिव सब ओर नृत्य कर रहे हैं।'

अमरनाथ जी की गुफा से लौटकर पहलगाम से यह दल बस द्वारा श्रीनगर को चला। तथापि अछबाल में भगवान् जी एक अन्य भक्त श्री भोलानाथ जी सहित उतर पड़े और अन्य देव-स्थानों के दर्शनार्थ पैदल चल पड़े। लगभग एक मास बाद वे श्रीनगर लौटे।

१९३६ के वर्ष में भी वे अपने गुरु-भाई स्वामी आफ़ताब ज वांग्नू और अन्य व्यक्तियों के साथ इस देव-स्थान को गये थे। वहाँ से लौटते समय वे हंगुलगुण्ड में स्वामी मिर्ज़ा काक की समाधि में और उमा जी के स्थल (ब्रारिआंगन) में भी गये जहां उमा-शंकर के मुख्य प्रपात के अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र से पवित्र अन्य प्रपात भी हैं। आजकल इस देव-स्थान का पुनरुद्धार एक नवयुवक स्वामी स्वयमानन्द जी द्वारा कराया जा रहा है।



अध्याय-६

दैनिक चर्या

श्रीनगर के विविध स्थानों में या श्रीनगर के बाहर के विविध देव-स्थानों में रहते समय भगवान् जी अपने आसन पर पूरे चौबीसों घण्टे बैठे हुये परब्रह्म के ध्यान में नितान्त रूप से निमग्न रहा करते थे। जब वे डलहसनयार मुहल्ले में (१६३७-४७) निवास करते थे, तब उनका आसन इमारत की दूसरी मंजिल पर एक खिड़की के पास था, जहाँ से एक गली दिखाई पड़ती थी। रेशी मुहल्ले में (१६४७-५७) और चन्दपोरा में (१६५७-६८) उनका आसन पहली मंजिल पर था। डलहस-नयार और रेशी मुहल्ले में रहते समय वे अनेक देव-स्थानों के दर्शनार्थ बाहर गये थे। तथापि चन्दपोरा के अपने निवास-स्थान से केवल अति विरल अवसरों को छोड़कर वे बाहर नहीं निकले। यह अवश्य एक निश्चित तथ्य है कि अपने जीवन के पिछले वर्षों में उन्होंने अपना आसन बिलकुल ही नहीं छोड़ा। अपने जीवन के अन्तिम दो वर्षों में तो प्राकृतिक नित्य-कर्मों के लिये भी उन्होंने आसन का त्याग नहीं किया। उनकी यह अवस्था 'आसन-ज़िय' के नाम से प्रसिद्ध थी।

प्रति प्रातःकाल वे अपना मुख और यज्ञोपवीत एक नल पर धोते थे और पुनः अपने आसन पर बैठ जाते थे। फिर वे अगले प्रातः तक या कभी-कभी ४८ घण्टों तक आसन को लघुशंका तक के लिए भी नहीं छोड़ते थे।

आसन पर बैठे हुये वे अपना साफ़ा बाँधते और केसरिया तिलक लगाते, जिसके मध्य में भस्म का स्पर्श रहता था। फिर वे अपनी धूनी को प्रज्वलित करते थे। धूनी के लिये लगभग डेढ़ फीट व्यास की एक लोहे की सिगड़ी प्रयोग में लाते थे। यह पाषाण-खण्डों पर या एक बड़ी वृत्ताकार थाली में रखी जाती थी। कभी-कभी वे यथा आवश्यकता अपनी धूनी के लिए केवल बाह्य थाली को ही काम में लाते थे। धूनी के लिए ईंधन के रूप में लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। धूनी में कुछ आहुतियां देने के बाद वे अपनी चिलम भरते थे और धूम्र-पान प्रारम्भ करते थे। धूनी प्रातः से सायंकाल तक जलती रहती, जिसमें रह-रहकर वे आहुति डालते रहते थे। आहुतियाँ भूरी चीनी, चावल, जौ, सूखे फल, तरह-तरह के फूल, पुदीना और स्किमिया की पत्तियों, बेल-पत्र आदि की होती थीं।

आकाश की ओर दृष्टि लगाए वे कुछ रुक-रुककर अपनी चिलम पिया करते थे। प्रायः उनकी चिलम से जलती हुई चिनगारियाँ उनके चोला (जिसे काश्मीर में फिरन कहते हैं) पर या उनके आसन पर गिरतीं और उन्हें जलाकर उनमें छेद कर देतीं। अधिकतर अपनी गहरी ध्यान-मग्नता के कारण उन्हें इसका भान तक न होता। अपना धूम्र-पान समाप्त करने के बाद ही वे जलती हुई चिनगारियों को हटाते थे और जलते हुए कपड़ों की आग पर पानी की कुछ बूँदें छिड़ककर उसे बुझाते थे। कोई भी उनके फिरन में इस प्रकार के छिद्रों को देख सकता था, जिनके रफू कराने की भी वे परवा नहीं करते थे।

कुछ निश्चित विरल अवसरों पर वे अपनी धूनी की वृहत् लोहे की थाली को तम्बाकू से भर देते, उसके ऊपर हल्दी की

एक तह छिड़कते और उस पर चीनी तथा विविध प्रकार के आटे, चावल, मक्की एवं गेहूं की तहें लगाते और उसमें स्वयं आग लगाते। यह अग्नि २ या ३ दिन तक जलती रहती, जब तक कि सब कुछ जलकर भस्म न हो जाता। इस अवधि में वे यदि कुछ खाते भी तो बहुत अल्पाहार करते और अपनी चिलम से कश खींचते ध्यान-मग्न रहा करते। इस धूनी को वे किसी को भी, आग कुरेदने तक के लिए, छूने नहीं देते थे। यह बात मुझे अपेक्षतया असाधारण लगी। एक बार मैंने उनसे यह पूछने का साहस किया कि यह सब किस-लिए था। उन्होंने बताया कि 'यह किसी को बचाने के लिए महाकाल (मृत्यु के देवता) से प्रार्थना थी।' अपने जीवन के अन्तिम १० वर्षों में उन्होंने इस क्रिया को केवल चार या पाँच अवसरों पर ही दुहराया था।

व्यक्तिगत स्वास्थ्य-रक्षा

अपने जीवन के पिछले ३० वर्षों में उन्होंने, प्रतीत होता है, केवल दो अवसरों को छोड़कर कभी स्नान नहीं किया। एक बार उन्होंने खीर भवानी में स्नान किया था, जहाँ तीर्थ-यात्री पूजा करने के पूर्व स्नान करते हैं और फिर अपने अन्तिम निवास स्थान चन्दपोरा में तब स्नान किया था जब डल झील जम गई थी। उनके नहाने के तुरन्त बाद ही बर्फ पिघलने लगी और जो शीत लहरी सारी घाटी में व्याप्त थी वह समाप्त हो गई।

वे स्नान इसलिए नहीं करते थे क्योंकि अपने शरीर को वे इस दृष्टि से नहीं देखते थे, जिस दृष्टि से हम लोग अपने शरीर को देखते हैं। एक बार मैं उनके पैर दबा रहा था। उन्होंने मुझे बताया कि 'ये लकड़ी के टुकड़े हैं।' यद्यपि वे स्नान नहीं

करते थे, फिर भी उनके शरीर से एक सुखद सुगन्ध निकला करती थी।

भगवान् जी प्रति मास एक बार अपने सिर के बाल कटाते थे। उनके भक्त उनके शरीर में तेल से मालिश किया करते थे, किन्तु महा-समाधि के कुछ वर्षों पूर्व उन्होंने यह कहकर इसे बन्द करा दिया कि 'मेरी त्वचा में पर्याप्त तेल है।' मालिश के बाद वे कभी स्नान नहीं करते थे। कुछ लोगों को उन्होंने यह सलाह तक दी थी कि 'अपनी शारीरिक रुग्णता को अच्छा करने के लिए स्नान के बाद तेल की मालिश कराया करो।'

वेष-भूषा

१६२५ के पूर्व भगवान् जी मूल्यवान पशमीनी फिरन (चोला) और आधुनिक जूते पहना करते थे। १६२५ का वर्ष परिवर्तन का विन्दु इंगित करता है। प्रतीत होता है कि इस समय से उनकी रुचि इस बात से जाती रही कि वे अपने को आवृत करने के लिए क्या पहनते हैं। अपनी बहिन या भक्तों के अनुरोध करने पर वे सप्ताह में एक बार या एक पक्ष के बाद अपने कपड़े बदलते थे।

बाद के वर्षों में वे एक कमीज, एक कमर-बन्द, कोट और लंकलाट के बने एक भीतरी चोला के साथ एक फिरन का प्रयोग करते थे। जाड़े में प्रयुक्त फिरन ऊन की और गर्मी में रंगीन लिनेन की होती थी। जाड़े में वे एक ऊनी कम्बल का और काश्मीर के बर्फ़ीले महीनों में अपनी फिरन के नीचे एक कागड़ो (कश्मीरी अंगीठी) का प्रयोग करते थे।

भोजन

प्रातः ६ बजे वे केवल चाय की हरी पत्तियों और चीनी से बनी बिना दूध की चाय (काश्मीरी में "कहवा") का एक प्याला लेते थे। १ बजे दिन में वे चावल, सब्ज़ी आदि का अपना प्रातः-भोजन करते थे, किन्तु इस भोजन के लिए उनकी बहिन को उन्हें अनेक बार याद कराना पड़ता था, तब कहीं वे इसे करने को तैयार होते थे। प्रायः वे इस भोजन को इस बहाने टाल जाते कि 'अभी बहुत जल्दी है' या 'अब बहुत देर हो गई है।' अपराह्न में वे चाय का एक दूसरा प्याला चीनी या दूध और नमक के साथ लेते थे (काश्मीरी में "शीर-चाय")। विरल अवसरों पर इस चाय के साथ वे रोटी का एक टुकड़ा लेते थे। कभी-कभी वे सायंकाल चावल का आहार लेते या केवल कुछ दूध ही लेकर रह जाते। अपने महा-निर्वाण के आठ मास पूर्व उन्होंने दिन का यह एक बार का भोजन करना भी त्याग दिया था। ८ महीने की इस अवधि में बहुत अनुरोध करने पर उन्होंने चार अवसरों पर भोजन किया था। उन्होंने कभी मिठाइयों या अन्य विलासिताओं में कोई रुचि नहीं दिखाई, यद्यपि वे शफ़तालू को पसन्द करते प्रतीत होते थे।

अपना भोजन या चाय लेते समय भी वे क्या खा-पी रहे हैं इस ओर कोई ध्यान देते प्रतीत नहीं होते थे और असीम में ही मग्न रहते थे। गर्म काश्मीरी चाय जस्ते के प्यालों में, जो 'खोस' कहे जाते हैं, दी जाती है, और उसे सूती तौलिए से पकड़ते हैं। कई अवसरों पर चाय से भरा प्याला घण्टे भर या इससे अधिक उनके हाथ ही में रहता था। जब वे जागते से प्रतीत होते तब या तो उसे एक घूंट में पी जाते यद्यपि वह ठण्डा हो चुका होता या उसे फेंक देते।

पेय

जो कुछ भो भगवान् जी को दिया जाता वे उसे स्वीकार कर लेते थे। कुछ लोग उन्हें ब्राण्डी, व्हिस्की या अन्य मादक पेय प्रदान करते। वे उपस्थित भक्तों में उसे अल्प मात्रा में वितरित करते और बोतल का शेष सारा स्वयं समाप्त कर देते थे। पीते समय उनका शरीर हिलता था जिससे उपस्थित लोगों को ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वे जीवात्मा को आवृत करनेवाले अपने अन्तःकरण के आवरणों (चित्, बुद्धि, मन और अहंकार) को निकाल बाहर कर रहे हैं। वे २ या ३ घण्टे या अधिक समय के लिए किसी प्रकार की समाधि में मग्न हो जाते जो बीच-बीच में थोड़ी देर के लिए भंग होती, जिसमें वे अपनी चिलम पीते थे। पेय लेने के बाद वे अनेक घण्टों तक भोजन को छूते तक नहीं थे।

उपवास

भगवान् जी उपवास बहुधा किया करते थे। कभी एक मास या तीन मास के लिए और कभी छः मास के लिए। उनका उपवास उत्सवात्मक ढंग का नहीं होता था जिसमें दिन का एक आहार छोड़ा जाता है या अन्य व्यवहारों का निर्वाह किया जाता है। इसके विपरीत वे विरल अवसरों पर एक प्याला चाय छोड़कर पूर्ण निराहार रहते थे।

शारिका भगवती के पीठ में वे पण्डित राम जू पुरोहित के मकान में रहते थे। एक बार भगवान् जी ने लगातार ३३ दिनों तक उपवास किया। वे बहुत ही निर्बल हो गए, यहाँ तक कि एक दिन खड़े होने का प्रयास करते समय वे चेहरे के बल गिर पड़े, किन्तु इससे वे उपवास से विचलित नहीं हुए।

वे एक रहस्यमय महान् पुरुषार्थी सन्त थे। कितना ही

कठिन लक्ष्य हो उसे प्राप्त किए बिना वे छोड़ते नहीं थे। एक बार, जब कि ३ दिन उन्होंने भोजन नहीं किया था, पण्डित ग्वाशराम नामक सज्जन ने उनसे भोजन करने का अनुरोध किया। इस पर वे उत्तेजित हो उठे और मेरी उपस्थिति में उनसे कहा कि 'क्या आज तुमने जन्म लिया है (ऐसा अनुरोध करने के लिए) ? मैंने कई बार ६ मास तक भोजन नहीं किया है।'

यह एक प्रकट तथ्य है कि आध्यात्मिक प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होनेवाले अल्पाहारी होते हैं। सम्भव है कि क्षुधा को जीतने के लिए उन्होंने बहुधा उपवास किया हो। एक बार उन्होंने एक भक्त को, जिसे वे अग्रसर करना चाहते थे, यह उपदेश किया था कि 'भूख की पीड़ा अनुभव होने पर नहीं खाना चाहिए, अपितु इसे (शरीर को) तब खिलाना चाहिए जब यह भोजन न माँगे।'

उपवास से उनके आदर्श-पालन में किसी प्रकार का व्यतिक्रम नहीं पड़ता था, अपितु ऐसे अवसरों पर मानसिक रूप से वे कहीं अधिक जागरूक दृष्टिगत होते थे, यद्यपि फेनिल होठों, सूखे मुँह और शुष्क जीभ से उनके शरीर पर पड़नेवाले भारी दबाव का बोध होता था। इन दिनों में उनकी चिलम ही बहुत कुछ उनकी सतत संगिनी रहती थी। भक्तों द्वारा कुछ भोजन लेने का अनुरोध करने पर वे कहा करते थे कि 'अपनी चिलम से धूम्र-पान कर मैं पर्याप्त भोजन पा जाता है।'



भगवान् श्री गोपीनाथ जी



असीम में तल्लीन

अध्याय—७

विवाह और यौन सुख

यद्यपि भगवान् जी के पिता और अन्य सम्बन्धियों ने उनसे विवाह करने का आग्रह किया किन्तु उन्होंने इस सलाह को ठुकरा दिया। उन लोगों का अनुमान था कि यदि उनका विवाह हो गया तो वे गृहस्थ जीवन अपना लेंगे और उनके लिये भोजनादि की व्यवस्था करेंगे, किन्तु यह उनका स्वप्न ही रहा।

भगवान् जी जन्मतः ब्रह्मचारी थे और अपने सारे जीवन वे अविवाहित रहे। निश्चय ही अपने अनेक पूर्व जन्मों के अभ्यास से उन्होंने प्रकृति की इस तीव्र प्रेरणा से अप्रभावित रहने की यह प्रवीणता अर्जित की थी क्योंकि सन्त लोग तक अन्य प्रकार से श्रेष्ठ होते हुये भी इस प्रेरणा के प्रखर आघात से पराजित होते देखे गये हैं।

जिस प्रकार स्वामी रामकृष्ण लोगों को कामिनी और कंचन (स्त्री और धन) से बचने की सलाह दिया करते थे, भगवान् जी कहा करते थे कि 'जब तक यौन-भावना है, तब तक आध्यात्मिक प्रगति का मार्ग कहाँ ?'

जब वे लगभग २० वर्ष के युवक थे तब उनके कुछ सहपाठी साथी थे। भगवान् जी का व्यवहार ईश्वर-परायण ही रहा था, अतः उनकी परीक्षा लेने के लिये वे उन्हें एक बदनाम घर में ले गये जहाँ वे यौन-सुख के लिये जाया करते थे। उनके साथियों में से प्रत्येक बारी-बारी से उस महिला के कमरे में

गया। सबसे अन्त में इनकी बारी आई। वे उसके कमरे में गये और देखा कि महिला सम्पर्क-स्थिति में लेटी हुई है। उसे 'मायाविनी' सम्बोधन करते हुये उन्होंने उसे खड़े होने का निर्देश किया, उसको एक फटकार दी और इस दुष्ट जीवन को छोड़ने की सलाह दी तथा उसके चेहरे की ओर एक रुपया फेंक कर कमरे से बाहर निकल आये। उसके कमरे से लौटने पर उन्होंने कहा कि 'बड़ा आनन्द रहा।'

और लोग यौन-सुख में आनन्द पाते थे जब कि वे इसे संयम में अनुभव करते थे। ठीक अगले ही दिन भगवान् जी ने इस तथ्य को अपने साथियों को उद्घाटित किया और अपने तथा कथित साथियों और उस स्त्री की दशा पर दुःख प्रकट किया।

कुछ सन्त लोगों को अपने शरीर को छूने नहीं देते किन्तु भगवान् जी उनसे भिन्न थे। वे किसी को भी, जो चाहता, अपने चरण या पैर दबाने की अनुमति दे देते थे और बारम्बार यह कहा करते कि 'मेरे पैर लकड़ी के टुकड़े मात्र हैं।'

एक बार जब मैं बीमार था और उनके पैर दवा रहा था, उन्होंने मुझसे कहा कि 'क्या तुमने अपना वार्धक्य मुझ पर फेंक दिया है?' सामान्यतः सन्त लोगों को अपने आपको इसलिये नहीं छूने देते क्योंकि इससे उनके दोष या रोग सन्त को लग जाते हैं, किन्तु वे दया-सागर थे और इस प्रकार की बातें उन्हें तनिक भी प्रभावित नहीं करती थीं और लोग उनके शरीर की सेवा में शान्ति पाते रहे।

जब वे रेशी मोहल्ला (१९४७-५७) में निवास कर रहे थे, एक महिला उनके स्थान पर आई। जैसे ही उसने अपना आसन ग्रहण किया वे एक लोहे का चिमटा लेकर उसे पीटने लगे। जब वह भागी तो उन्होंने घर के बरामदे तक और घर के

बाहर की गली तक भी उसका पीछा किया। ऐसा रोष उन्होंने पहले कभी किसी अवसर पर प्रकट नहीं किया था। अतः उनके कमरे में बैठे सभी लोग आश्चर्य में पड़ गये। जब उन्होंने आसन ग्रहण किया तब स्वयं ही स्पष्ट किया कि 'वह चरित्रहीन महिला उसी प्रातःकाल दो मित्रों से मिली थी और अब पाप में सनी मेरे पास आई थी।'

एक बार काश्मीर के बाहर से ५ महिलाओं का एक दल भगवान् जी के दर्शनार्थ आया। उन्होंने काश्मीरी में कहा कि 'वे वेश्या-वृत्ति में हैं। यह कलियुग है।'

एक बार एक सज्जन एक विधवा के माधुर्य के शिकार हो गये और उससे मिलने की योजना बना रहे थे। वे भगवान् जी के दर्शनार्थ आये। जैसे ही वे उनके सामने बैठे, उन्होंने (भगवान् जी ने) सभी उपस्थित लोगों से कहा कि 'वीर्य की एक बूंद चारों ओर आग लगा देगी। ऐसी मूर्खता क्यों करो।' उक्त सज्जन समझ गये कि यदि विधवा गर्भवती हो गई तो एक कट्टर परिवार से सम्बन्धित होने के कारण इसकी खबर आग की तरह फैल जायगी जिससे उनका और विधवा का घोर अहित होगा तथा गर्भपात या किसी अन्य साधन द्वारा बच्चे की मृत्यु की सम्भावना होगी। सज्जन व्यक्ति भय से काँप उठे।

लोगों को ठीक मार्ग पर लाने का यह उनका ढँग था। एक बार एक अन्य सज्जन एक सुडौल अंगोंवाली महिला पर मुग्ध हो गए और उसका पीछा करने लगे तथा उससे मिलने की योजना बनाने लगे। उसी शाम भगवान् जी ने उससे कहा कहा कि 'सुन्दर शरीर में क्या आकर्षण है? यह सब महाकाल (मृत्यु के देवता) का आहार है।'



अध्याय–६

लोक-हितैषी स्वभाव

इस तथ्य के अतिरिक्त कि भगवान् जी उन लोगों की, जो आध्यात्मिकता के मार्ग पर प्रगति करने के लिए उनके पास आते थे या अन्यों की, जो अपनी भौतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए या अपने दुःखों या जीवन-यात्रा में उन्हें विचलित करने-वाली अन्य कठिनाइयों के दूर करने के लिए उनके दर्शनार्थ जाते थे, सहायता किया करते थे (वे शक्ति के सागर थे), वे अधिकारी व्यक्तियों की आर्थिक सहायता भी किया करते थे।

काश्मीर आनेवाले साधुओं के समूह में से प्रत्येक को, जब कभी और जितनी बार वे उनके स्थान पर आते, वे एक-एक रुपया दिया करते थे। ऐसा वे क्यों करते थे, यह एक दिन मुझे तब स्पष्ट हुआ, जब मैंने निम्नलिखित घटना देखी।

एक दिन मैं भगवान् जी की बहिन से उस इमारत के निचले खण्ड में मिला, जहाँ कि वे ठहरे हुए थे। वे कटुतापूर्वक इस बात की शिकायत कर रही थीं कि वे साधुओं को सारा धन देते जा रहे हैं जिससे घर की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहुत कम पैसा बचता है। मैं इस बात से सहमत प्रतीत हुआ कि भगवान् जी को घर की आवश्यकताओं के प्रति इस प्रकार निरपेक्ष नहीं रहना चाहिए, जैसा कि वे थे। जैसे ही मैंने उनका अभिवादन किया और उनके समक्ष बैठा, उन्होंने कहना प्रारम्भ किया कि "इन ग़रीब गोसाइयों (साधुओं) के पास बैठने को केवल जमीन और छाया के लिए आकाश है और नंगे हैं तथा भूखों मर रहे हैं।" मैं लज्जित हो उठा। इन साधुओं

में से कुछ ने मुझे बताया कि "उनसे रुपया मिलने के बाद अन्य साधन हमारे लिए अपने आप ही सुलभ हो गए।"

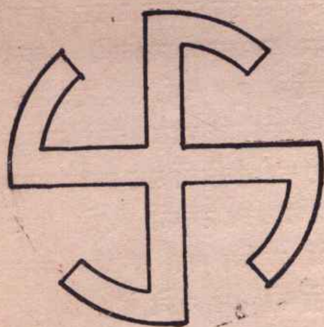
भगवान जी की दान-शीलता के कुछ उदाहरण और उल्लेखनीय हैं।

पण्डित दीनानाथ उस परिवार के पुरोहित थे जिसके साथ भगवान् जी निवास कर रहे थे (१९५७-६८)। वे बहुत निर्धन थे और उनके तीन पुत्रियाँ थीं, जिनमें से दो विवाहिता थीं और तीसरी विवाह योग्य आयु की थी। एक दिन इस अविवाहिता पुत्री के साथ वे भगवान् जी के पास आए। उन्होंने उनके सामने अपनी पास-बुक रख दी, जिसमें कुल ५०० रु० थे और उनसे कहा कि "मैं या तो स्वयं विष खा लूंगा या अपनी पुत्री को विष दे दूंगा क्योंकि इसके विवाह के लिए मेरे पास कहीं कोई साधन नहीं है।' भगवान् जी प्रत्यक्षतः द्रवित हो गए। उन्होंने उन सज्जन से कहा कि "दो दिन बाद सोमवती अमावास्या को तड़के प्रातः फिर आना और मेरे दरवाजे (जिसमें ताला नहीं लगाया जाता था) को तीन बार खटखटाना। यदि तीसरी बार खटखटाने पर दरवाजा न खुले, तो अपने घर लौट जाना।' जैसे ही उन्होंने तीसरी बार खटखटाया, भगवान् जी ने स्वयं द्वार खोला और आसन पर फिर बैठ गए। उन्होंने उन्हें तीन बार चरणामृत (पवित्र जल) पीने को दिया, जो कमल-पुष्प की एक पंखुड़ी में रखा था। पुरोहित जी का कथन है कि पंखुड़ी में केवल एक बूंद थी, जिसके तीन भाग होते प्रतीत हुए। उन्होंने यह भी भविष्यवाणी की कि उनकी पुत्री का विवाह ६ महीने में ही हो जायगा और भविष्य में उनकी जेब कभी खाली नहीं रहेगी। अपनी पुत्री के विवाह की तिथि निश्चित करने के बाद ये सज्जन फिर भगवान् जी के दर्शनार्थ आए,

जिन्होंने उन्हें २०० रु० दिए और उनसे कहा कि "कोई चिन्ता मत करो। विवाह के लिए आवश्यक धन तुम्हें मिल जायगा।" उन्हें अन्य व्यक्तियों से नकद और वस्तु की सहायता प्राप्त हुई और इस प्रकार वे ठीक ६ महीने की निर्धारित अवधि के भीतर अपनी पुत्री का विवाह सम्पन्न करने में सहज ही समर्थ हो गये। यह पुरोहित मुझे हाल में मिले थे और मुझसे उन्होंने चुपचाप बताया कि 'भगवान् जी से उस दिन मिलने के बाद से मेरी जेब कभी खाली नहीं रही।" स्वभावतः प्रश्न यह उठता है कि यदि उस पुरोहित की निर्धनता उसके पूर्व कर्मों से सम्बन्धित थी, तो भगवान् जी ने उनकी सहायता कैसे की ?

वर्ष १९६१ में भगवान् जी ने कुछ महीनों तक खीर भवानी में निवास किया था। एक अवसर पर, जब केवल दो लोग पंडित दीनानाथ तिकू और स्वामी अमृतानन्द (दोनों उनके शिष्य) उनकी कुटिया में उपस्थित थे, एक महिला आई और धीमें स्वर में उनसे कहा कि "मेरी पुत्री के विवाह की तिथि (जन्म-पत्र के अनुसार) आज से १० दिन बाद है। जिस महाजन ने मुझे धन उधार देने का वचन दिया था वह अन्तिम समय पर अपनी बात से हट गया है। अब मैं असहाय हूं और हत-बुद्धि हूं कि क्या करूँ।" भगवान् जी ने तुरन्त ही महिला के हाथों में अपनी कपड़े की थैली खाली कर दी, जिसमें कुल ६०) थे। उन्होंने श्री तिकू को भी उसे कुछ धन देने का संकेत किया। उन्होंने डाकखाने के अपने बचत खाते से उसे ६००) दिये। कुछ दिनों बाद भगवान् जी उक्त पीठ-स्थान से श्रीनगर गये। कन्या के विवाह के बाद वह महिला श्रीनगर आई और विवाह-यज्ञ का

प्रसाद भगवान् जी को अर्पित किया। उन्होंने उससे कहा कि तुम मेरे लिये नैवेद्य क्यों लाईं ? मैं तो स्वयं समारोह के समय वहाँ उपस्थित था।" निश्चय ही भगवान् जी वहाँ अपने सूक्ष्म शरीर में रहे होंगे क्योंकि उस दिन वे श्रीनगर में थे।



अध्याय—९

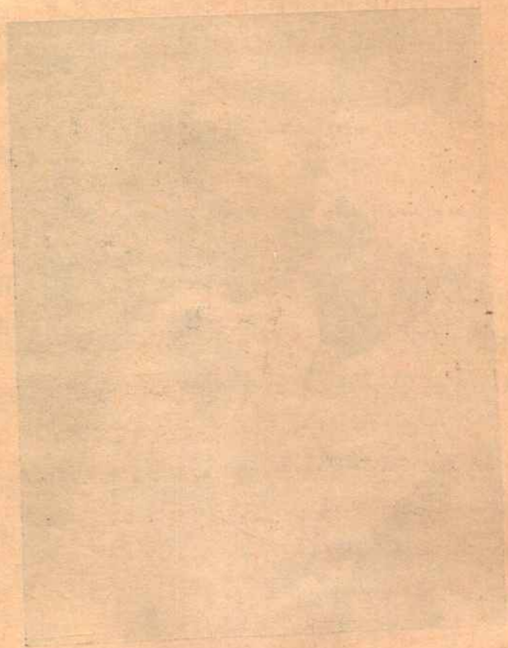
सर्व-साधारण के लिये दर्शन

१९४७ से लेकर उनके महानिर्वाण-प्राप्ति के दिन तक जहाँ कहीं भी भगवान् जी निवास करते रहे, सभी धर्मों के लोगों की एक विशाल भीड़ प्रतिदिन तड़के प्रातःकाल से लेकर रात्रि में देर तक उनके निवास-स्थान पर उनके दर्शनार्थ आती रहती थी। वे सभी समय उपलब्ध रहते थे। चन्दपोरा का कमरा (२०' × १२') जहाँ वे ११ वर्षों तक रहे, सदा लोगों से भरा रहता था। प्रायः कमरे की भीड़ इतनी अधिक हो जाती थी कि लोगों को बाहर की सीढ़ियों पर स्थान ग्रहण करना पड़ता था। सभी विचारों के लोग उनको अति पूज्य मानते थे और उनकी उपस्थिति में शान्ति का अनुभव करते थे तथा अपने दुःखों और उलझनों को भूल जाते थे।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है भगवान् जी एक अन्तर्मुखी व्यक्ति थे, बहुत कम बातें करते थे और सदा असीम के सम्पर्क में मग्न रहते थे। प्रश्नों का उत्तर वे प्रत्यक्षतः कदाचित् ही देते थे, किन्तु लोगों के स्पष्टतया अपनी बात कहे बिना ही परोक्ष रूप से वे उन्हें उत्तर दे दिया करते थे। वे बहुत ही करुणामय थे और सभी दुखी व्यक्तियों की सहायता करते थे। प्रार्थना करने पर उनकी व्याधियों को दूर करने हेतु वे अपनी धूनी से उन्हें भस्म दिया करते थे। रक्त कैंसर, मधुमेह, यक्ष्मा, अन्तः रक्त-स्राव और मस्तिष्क-विकार तक के रोगियों को वे अच्छा कर देते थे। सांघातिक रोगों से पीड़ित व्यक्तियों के



श्री भगवान् गोपीनाथ जी



सम्बन्धियों से वे प्रायः रोगी को अपने पास लाने को कहा करते थे। सभी लोग यह देखकर आश्चर्य-चकित हो जाया करते कि जो रोगी उन तक पहुँचने के भाग्यशाली होते, वे सर्वथा नीरोग हो जाते थे।

भगवान् जी ने कभी किसी व्यक्ति से धन या कोई अन्य वस्तु नहीं माँगी, किन्तु लोग स्वयं ही उन्हें धन, फल-फूल, चावल, चीनी और मिठाइयां भेंट किया करते थे। जो कुछ भी उन्हें दिया जाता उसे वे कभी अस्वीकार नहीं करते थे, किन्तु उसे वे अपने पास बैठे लोगों में बांट दिया करते थे। एक बार अपने सामने पड़े फलों, मिठाइयों आदि की ओर संकेत करते हुये उन्होंने मुझे बताया कि 'यह सब रक्त है।' इन उपहारों से संलग्न दोषों को वे अपने ऊपर ले लेते थे और अपने स्पर्श से पवित्र कर इन्हें प्रसाद-रूप में वितरित कर देते थे।

भगवान् जी को भेंट में कभी-कभी २, ५, १० या १०० रुपये के करेंसी नोट दिये जाते थे। वे इन सबको एक रुपये के नोटों में बदलवा लेते थे। इस धन को वे उन साधुओं में, जो अमरनाथ यात्रा के लिये या केवल गर्मी बिताने काश्मीर आते थे अथवा काश्मीर के ही अन्य साधुओं में, जो उनके पास आया करते, वितरित करते थे। प्रत्येक अवसर पर वे हर साधु को एक रुपया देते थे, उससे अधिक नहीं। यदि कोई अधिक देने के लिये आग्रह करता था तो वे उसे रुखाई से विदा कर देते थे।

काश्मीर में प्रति वर्ष हज़ारों साधु आते हैं और कोई दिन

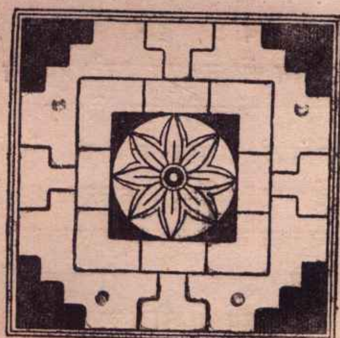
ऐसा नहीं बीतता, जब कि साधु भगवान् जी से दक्षिणा माँगने न आये। श्रावण मास में अमरनाथ जी की यात्रा की अवधि में तो कभी-कभी केवल एक दिन में १०० से अधिक साधु आ जाते थे। उनमें से कुछ को वे अपनी चिलम देते थे। २८ मई १९६८ को अपने महानिर्वाण के दिन भी असीम में लीन होने से पूर्व उन्होंने तीन साधुओं में से प्रत्येक को एक-एक रुपया दिया था।

भगवान् जी के जीवन के अन्तिम कुछ वर्षों में छोटे बच्चों की एक बड़ी संख्या उनके पास आने लगी थी। उन्हें टाफियाँ या जो कुछ भी उनके पास रखा होता, दिया करते थे। उनकी पहली रुचि अपनी धूनी में आहुतियां देने की रहती थी।

छात्रों की एक बड़ी संख्या उनके पास आया करती और वे उनसे अपनी परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिये सहायता करने की प्रार्थना किया करते थे।

दुश्चरित्र लोगों को लोहे के चमचे से, जिससे वे अपनी धूनी में आहुतियां देते थे, पीटकर या लोहे के चिमटे को उन पर फेंककर वे खदेड़ दिया करते थे परन्तु किसी को कोई गम्भीर चोट नहीं लगती थी। कुछ अवसरों पर बिना किसी प्रकट कारण के वे बहुत ही क्रुद्ध हो जाते और ऐसा रुद्र रूप धारण करते कि उपस्थित लोगों में से प्रत्येक व्यक्ति काँप उठता था, किन्तु कुछ ही क्षणों बाद वे पुनः अपने सौम्य स्वरूप में आ जाते और मुस्कुराने लगते थे (वे कभी हँसते हुये नहीं देखे गये)। बाद में वे उन लोगों को प्रसाद देते, जिन्होंने उनके हाथ से मार खाई थी। ईश्वर-कोटियों और उन साधुओं के प्रति, जिन्होंने

वास्तव में संसार को त्याग दिया था, वे बड़ी श्रद्धा के साथ व्यवहार करते थे। कुछ साधुओं के सम्बन्ध में वे कहते कि 'ये बाजीगर हैं', फिर भी उनमें से प्रत्येक को वे एक रुपये की दक्षिणा प्रदान करते थे।



अध्याय–१०

साधना

एक महान् रहस्यपूर्ण सन्त को साधना के विषय में, जो साक्षात् ईश्वर थे, किसी प्रज्ञ के लिये कुछ लिखना कठिन है। महायोगी अरविन्द घोष के सम्बन्ध में श्री के० एम० मुंशी और श्री आर० आर० दिवाकर द्वारा लिखित काल-क्रमात्मक जीवनी में उनके कथन को उद्धृत करते हुये ये विचार प्रकट किये गये हैं कि "मेरी जीवनी का लिखा जाना असम्भव है, इसके अतिरिक्त कवियों, दार्शनिकों और योगियों की जीवनियों के लिखने का कोई अर्थ नहीं है। कारण यह है कि लोगों को दिखाई देनेवाला उनका बाह्य व्यवहार उनका जीवन नहीं है। अब वे हमारे बीच में नहीं हैं और जो कुछ विकीर्ण संकेत वे तथा उनके निकटतम सहयोगी पीछे छोड़ गये हैं उन्हीं से हमें सन्तुष्ट होना है।"

भगवान् जी की जीवनी लिखने हेतु हमारे पास जो सामग्री है, वह केवल यही है—समय समय पर भगवान् जी के कथन, संकेत और उद्गार, जिन्हें मैंने उनके साथ अपने दो दशकों से अधिक समय तक विस्तृत सम्पर्क की अवधि में सङ्कलित किया तथा जो अन्य भक्तों द्वारा उनके साथ अपने व्यक्तिगत दीर्घकालीन सम्पर्क में एकत्र किये गये। इन भक्तों की सूचना बहुत उपयोगी और साथ ही प्रामाणिक है।

भगवान् जी जब आकाश की ओर दृष्टि स्थिर किये चिलम

पोते थे, तब कोई भी उनके ध्यान में विघ्न डालने का साहस नहीं करता था। यदि उनसे कुछ पूछा जाता, तो वे हमारे स्तर पर आ जाते थे, किन्तु पुनः आनन्द की अपनी स्थिति में लौट जाते थे।

सुविधा के लिये हम निम्नलिखित अवधियों में उनकी साधना और उनसे सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन अलग अलग करेंगे क्योंकि ये उनके जीवन के इतिहास के सीमा-चिह्न हैं—

(क) १९०८ से १९२४ ई० के बीच की अवधि
(ख) १९२४ से १९३० ,, ,,
(ग) १९३० से १९३७ ,, ,,
(घ) १९३७ से १९४७ ,, ,,
(च) १९४७ से १९५७ ,, ,,
(छ) १९५७ से १९६८ ,, ,,

(क) अवधि—१९०८ सें १९२४

सौभाग्य से लगभग ५ दशक पूर्व भगवान् जी द्वारा अपने हाथ से संस्कृत (देवनागरी और शारदा दोनों में) और उर्दू लिपि में लिखित कुछ प्रार्थनाएँ हमारे पास हैं। उनसे और अन्य स्रोतों से संकलित सूचना से हम उनकी प्रारम्भिक साधना का कुछ सूक्ष्म परिचय पा सकते हैं।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, अपने बचपन के अति प्रारम्भ से ही पंच-स्तवी, भवानी-सहस्रनाम, सौन्दर्य-लहरी, विष्णु-सहस्रनाम, महिम्न स्तोत्र, उत्पल-स्तोत्रावली, भगवद्-गीता, गुरु-गीता और काश्मीरी सन्तों के वाक् जैसे स्तोत्रों का पाठ वे अपनी स्मृति से किया करते थे। ओज-पूर्ण संगीत और रस-लीलाओं में, जिनका आयोजन वे स्वयं करते थे, वे अत्यधिक रुचि दिखाते थे। इन अवसरों पर वे परमानन्द में

डूब जाते थे।

१९२० से आगे उन्होंने हारि पर्वत की शारिका भगवती के देव-स्थान की पहाड़ी के चारों ओर प्रतिदिन परिक्रमा करनी आरम्भ की और वे उक्त पहाड़ी के सामने एक सपाट मैदान अर्थात् देवी आंगन में सब ओर से खुली एक कुटिया में बैठ जाते, अपनी चिलम पीते तथा घण्टों तक ध्यान-मग्न रहते और तब अपने निवास-स्थान को लौटते थे। किर्याने की दूकान चलाते समय (जिसे उन्होंने लगभग १९२५ ई० में छोड़ दिया) एक दिन सायंकाल उन्होंने दूकान के लकड़ी के पटरे खड़े कर दिये किन्तु झिलमिली में सिटकनी तथा ताला नहीं लगाया और अपने साथी से चुपके से कहा कि 'देखें कि विधवा (अर्थात् दिव्य मां शारिका भगवती) वास्तव में है या नहीं।' इसके बाद वे देव-स्थान को चल दिये। निश्चय ही भगवान् जी देवी के इतने निकट रहे होंगे कि उन्होंने उनके लिये 'विधवा'-पद का प्रयोग किया। रात्रि में लगभग ११ बजे मकान का स्वामी कदाचित् किसी प्राकृतिक शंका-निवारण हेतु नीचे आया। दूकान को बिना ताले के देखकर वह घबरा गया और डरा कि चोरी हो गई। दूकान से लगे लकड़ी के चबूतरे पर बैठकर वह रात भर पहरा देता रहा। प्रातःकाल भगवान् जी तथा उनका साथी हारि पर्वत से वापस आये और मकान-मालिक ने उनकी असावधानी के लिये उनको झिड़का। भगवान् जी ने कोई परवा नहीं की और दूकान खोली।

भगवान् जी की अपनी हस्त-लिपि में जो प्रार्थनाएँ आश्रम में रखी हैं, वे ये हैं—

१–महा-गणेश के प्रति एक गीत
२–दिव्य मां के प्रति ,,

३–भगवान् नारायण के प्रति एक गीत
४–भगवान् ।शव ,, ,,
५–गुरु के प्रति ,,
६–शारदा में दुहरी रेखाओं में एक ओंकार, जिसके चारों ओर 'राम राम' लिखा है और दुहरी रेखाओं के बीच का स्थान रिक्त है।
७–शारदा में एक दुहरी रेखाओं में ओंकार, जिसके चारों ओर 'शिव शिव' लिखा है और दुहरी रेखाओं के चारों ओर का स्थान रिक्त है। इस ओंकार के ऊपर एक स्तुति गुरु के प्रति है।
८–शारदा लिपि में दो पंक्तियों में एक तान्त्रिक मन्त्र।

ये तथा अन्य विवरण यह दर्शाते हैं कि प्रारम्भ में वे प्राचीन सनातन पंचांग उपासना करते थे। यह उस अवधि से सम्बन्धित है जब वे श्रीप्रसाद जू पारिमू और श्रीकेशवजू दर के मकान में रहते थे अर्थात् १९१९–१९२४, जब उनकी आयु १९-२६ वर्षों के मध्य थी। ऐसा प्रतीत होता है कि इस अवधि के उत्तर भाग में भगवान् जी को दिव्य मां शारिका भगवती का साक्षात्कार प्राप्त हुआ था। वे उनकी कुल देवी भी थीं।

जिस प्रकार स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने अपनी आराधना दिव्य मां महाकाली की पूजा से प्रारम्भ की तथा उनका साक्षात्कार प्राप्त किया था और तब आध्यात्मिकता के अन्य क्षेत्रों का शोध आरम्भ किया, उसी प्रकार भगवान् जी का भी मामला था।

(ख) अवधि—१९२४ से १९३०

इस अवधि में पण्डित टिक भायू के मकान में (रंगटेंग, श्रीनगर में) उनके पिता की मृत्यु हुई। यहाँ रहते समय, कहा

जाता है कि उन्होंने मौन धारण किया था किन्तु वे पूर्णतया एकान्तवासी नहीं हुए थे क्योंकि समय-समय पर उन्होंने पारिवारिक कार्यों को किया और अपनी छोटी बहिन के विवाह में भी भाग लिया।

(ग) अवधि—१६३० से १६३७

१६३० में भगवान् जी को रेंगटेंग (श्रीनगर) पण्डित दीनानाथ भोटा के मकान से स्थानान्तरित होना पड़ा। इस स्थान पर प्रतीत होता है कि वे गहरी साधना में सर्वथा मग्न हो गए थे। वे दीवार की ओर मुख किए एक बिस्तर पर लेटे हुए दिखाई देते थे और उनके कमरे में चौबीसों घण्टे एक छोटा दीपक जलता रहता था। उनकी बड़ी बहिन ने मुझे बताया कि इस अवधि में उनके कमरे में उनकी छोटी बेटी चान्दा जी तथा कुछ अन्य विशिष्ट लोगों को छोड़कर किसी को जाने की अनुमति नहीं थी। कमरा और भगवान् जी का बिस्तर धूल की परतों से ढँक गया था जिसे वे झाड़ने-बुहारने नहीं देते थे। मकड़ी के जाले और मकड़ियाँ भी इस कमरे में विद्यमान थीं। इस अवधि में एक चहे ने उनके पैर की एक एड़ी में एक छेद कर दिया था जो बहुत समय तक रहा। गहरी साधना की इस अवधि में वे कभी-कभी मुट्ठी भर धतूरा, अफीम, पानक और अन्य पदार्थ खाया करते थे।

इस स्थिति में कभी-कभी भगवान् जी को कटोरा भर रक्त वमन हो जाता था। उनका सारा शरीर सूज गया था और वे एक अघोर जैसे दिखाई देते थे। एक बार इस अवधि में उनकी बहिन ने उन्हें बताया कि 'हम लोग कितना भारी दुःख सहन कर रहे हैं' और उन्हें सांसारिक जीवन अपनाने की सलाह दी। इस पर उनका दृढ़ और स्पष्ट उत्तर यह था कि 'हमारी नाव एक

भगवती श्री ज्वालामुखी



ज्वाला-परीतास्य शिरोरुहां तां,
सरोज-शङ्खासि-गदा-धरां च ।
सिंहासन-स्थापित-पाद-युग्मां
ज्वालामुखीं सुहृदये स्मरामि ॥

समुद्र के मध्य है, या तो हम दोनों सुरक्षित पार उतरेंगे या डूब जाएँगे।'

इस अवधि में या तो वे महीनों उपवास करते या कभी भारी मात्रा में भोजन ग्रहण करते थे। यह तपस्या ७ वर्षों तक रही और महान् अग्नि-परीक्षा में वे भूत-वर्तमान-भविष्य के पूर्ण ज्ञान-सहित एक परोक्ष-द्रष्टा, परोक्ष-श्रोता सिद्ध के रूप में बाहर आए, जिसका शरीर तो बुरी तरह क्षत-विक्षत था, किन्तु आत्मा जाज्वल्यमान थी। यह वह अवधि प्रतीत होती है जब उन्होंने परमात्मा का साक्षात्कार या शिवत्व प्राप्त किया था।

(घ) अवधि—१६३७ से १६४७

१६३७ में अपनी बहिन देवमाली जी और अपने बड़े भाई गोविन्द जू के साथ वे डलहसनयार मोहल्ला, श्रीनगर, में पंडित नील कौल सर्राफ के घर में रहने लगे। उनकी एक अलग इमारत थी जिधर से एक बाज़ार दिखाई पड़ता था। इमारत की दूसरी मंजिल में एक खिड़की पर उनका आसन था, जहाँ से हारि पर्वत और शंकराचार्य पर्वत के देव-स्थान स्पष्ट दिखाई देते थे। वे अपनी चिलम पिया करते और कोरी आँखों को न दिखाई देनेवाले लोगों से बातें करते रहते। कभी-कभी वे हम जैसे साधारण लोगों को न दिखाई देनेवाले लोगों को निर्देश देते हुए दिखाई पड़ते थे। काश्मीर के तत्कालीन शासक महाराजा हरिसिंह की जहाँ वे प्रशंसा नहीं करते थे वहाँ वे युवराज करणसिंह के प्रशंसक थे। अब यह स्पष्ट था कि वे अपने वातावरण में रुचि ले रहे हैं। लोग उनके पास उनके दर्शनार्थ या अपने रोगों के निवारणार्थ या नौकरी, व्यापार आदि की प्राप्ति के उद्देश्य से आने लगे थे और वे उनकी सहायता करते थे।

यहाँ भी वे सदा ध्यान-मग्न रहते थे और उनके आस-पास बैठे लोगों की बात सुनने के लिए उन्हें जगाना पड़ता था। एक संक्षिप्त उत्तर देने के बाद वे पुनः अपनी समाधि में लीन हो जाते थे। कभी-कभी सम्बोधन करनेवाले व्यक्तियों को वे कोई उत्तर नहीं देते थे। कभी-कभी वे हारि पर्वत या अन्य देव-स्थानों को जाते और कुछ घण्टों के बाद लौट आते थे।

एक सिख सन्त भारत से आए थे और भगवान् जी की वे खोज में थे। उन्हें पाकर उक्त सन्त उनके पास लगभग ३ महीने रहे और उन्होंने उस सिख सन्त को पूर्ण रूप से दीक्षित कर दिया और वे सर्वथा सन्तुष्ट होकर काश्मीर से गए।

मलपुर, श्रीनगर के पण्डित महेश्वरनाथ ज़ुत्शी श्री शारिका भगवती के भक्त थे। वे एक शान्त व्यक्ति थे। अपने प्रयोग हेतु चावल तैयार करने के लिए वे स्वयं ही धान से भूसी निकालते थे। उन्होंने बताया कि उन्हें देवी शारिका भगवती से यह निर्देश मिला है कि भगवान् जी से दीक्षा लो। वे भगवान् जी के दर्शनार्थ आए। भगवान् जी ने उनका स्वागत किया, उन्हें भोजन, पेय और अपनी चिलम उसे स्वयं पी चुकने के बाद प्रदान की। इतना ही पर्याप्त था। वे एक अच्छे सिद्ध हो गए और दीक्षा के कुछ वर्षों बाद उनका स्वर्गवास हुआ।

इस अवधि में वे कुछ अन्तर पर क्षीरभवानी पीठ पर भी जाया करते, जहाँ वे कुछ दिन या कुछ महीने व्यतीत करते थे। इस पीठ पर जाने में सामान्य प्रथा यह है कि पीठ के मध्य में स्थित देवी के मुख्य प्रपात में पूजा करने के पूर्व पीठ के अहाते में बहनेवाली धारा में स्नान किया जाता है। वे इस प्रथा का पालन न कर सीधे पीठ में बनी एक कुटिया में चले जाते थे।

बहुत विरल अवसरों पर वे उक्त पीठ में पुष्प या दूध चढ़ाते

थे। अतएव यह सम्भव है कि जैसे स्पन्दन या स्फुरण वे अनुभव करते थे, उनके अनुसार ही अपनी क्रिया करने के उद्देश्य से वे विविध देव-स्थानों को जाया करते थे और किसी विशेष देवता की पूजा करने के लिए वे वहाँ नहीं जाते थे।

इस अवधि में उन्होंने अपनी कांगड़ी (अग्नि-पात्र) में प्रज्वलित लकड़ी के कोयलों को घण्टों तक फूँकते रहने का अभ्यास प्रारम्भ किया। समय-समय पर इस अग्नि में वे अल्प मात्राओं में आहुतियाँ देते रहते। कदाचित् अग्नि-तत्व को या इसके द्वारा अन्य तत्वों को सिद्ध करने के लिए वे ऐसा करते थे।

उनके बड़े भाई की मृत्यु १९४६ में हुई। इस समय तक वे ही भगवान् जी की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहे थे। जिस दिन उनके भाई की मृत्यु हुई, वे तड़के प्रातःकाल ही क्षीरभवानी को चले गए और वहाँ अपराह्न में उन्होंने अपने दाहने हाथ में यह कहकर पट्टी बँधवाई कि वह टूट गया है। यह ठीक वही समय था जब श्रीनगर में उनके भाई ने अपनी अन्तिम साँस ली। मृतक के दसवें क्रिया-दिवस पर उन्होंने उक्त पट्टी हटाई। इससे उस समय की उनकी विरक्ति के विस्तार का बोध होता है।

(च) १९४७-५७ के मध्य की अवधि

१९४७ के वर्ष के प्रारम्भ में भगवान् जी अपनी बहिन के साथ पण्डित माधव जू सत्थू के घर में स्थानान्तरित हुए, जिनसे उनकी बहिन की पुत्री चान्दा जी का विवाह हुआ था। यहाँ भी वे अपनी आध्यात्मिक साधनाएँ करते रहे और चिलम उनकी सतत साथी रही। इस स्थान पर अब उनके चमत्कार प्रायः

दिखने लगे थे । अपने अग्नि-पात्र (कांगड़ी) में, जो कश्मीर में सामान्यतः शरद् काल में लोगों द्वारा अपने को गरम रखने के काम में लाई जाती है, उन्होंने नियमित रूप से आहुतियाँ देनी प्रारम्भ कीं । घण्टों तक वे अग्नि ही फूँकते रहते । अब यह स्पष्ट था कि वे अपने कन्धों, घुटनों इत्यादि अपने शरीर के विभिन्न अंगों से आवेगों को निकाल रहे हैं । कभी-कभी वे अपने कन्धे या शरीर के किसी अन्य अंग को उठाते और ऐसा प्रतीत होता कि उन्हें प्राप्त होनेवाले आवेगों के प्रति वे प्रतिक्रिया कर रहे हैं । इस क्रिया को वे लोग तुरन्त ही हृदयंगम कर सकते हैं जो सूफी-मत का कुछ ज्ञान रखते हैं ।

इस अवधि में वे प्रायः विविध देव-स्थानों को जाया करते थे । इस अवधि की एक बहुत ही रोचक घटना का उल्लेख यह स्पष्ट करने के लिए किया जा सकता है कि वे कितने परोक्षदर्शी थे । एक धर्मात्मा व्यक्ति एक शैवाचार्य के पास जाया करते थे और भगवान् जी के भी दर्शनार्थ आया करते थे । ये व्यक्ति आचार्य के पास गए, जिन्होंने इनसे पूछा कि 'आप वापिस जाने की इतनी शीघ्रता में क्यों हैं ?' उनको यह सूचित करने पर कि वे भगवान् जी के दर्शन करना चाहते हैं, आचार्य जी ने अपनी विद्वत्ता को डींग हाँकते हुए कहा कि—'मैल की ढेर के सामने तुम कब से नत-मस्तक होने लगे ?' किन्तु इस उक्ति से उक्त व्यक्ति भगवान् जी के दर्शनार्थ जाने के अपने निश्चय से निरुत्साहित नहीं हुए । जैसे ही वे भगवान् जी के सामने आकर बैठे, उन्होंने (भगवान् जी ने) इन व्यक्ति से यह कहा कि 'मैल की ढेर के आगे नत-मस्तक होने तुम क्यों आते हो ? हम लोग कटे-छंटे विद्वान् नहीं हैं ।' उक्त व्यक्ति असमंजस में पड़ गए और उनसे क्षमा माँगी । कितनी ठीक यह

उक्ति है कि अतार्किक और अपठित लोग सहज ही भव-सागर के पार हो जाते हैं न कि वे लोग जिनका विद्वत्ता के कारण अहं उद्दीप्त हो जाता है।

इस अवधि में भगवान् जी के जन्म-दिवस वृहद् स्तर पर मनाए जाते रहे। पाँच सौ से अधिक लोगों को चावल का भोजन कराया जाता था। जन्म-दिवस पर उनका कुल-पुरोहित आता और पूजा करवाता तथा इस अवसर के लिए प्रस्तुत पीले किए हुए चावलों को पवित्र करता, किन्तु वे (भगवान् जी) इस सबको यन्त्रवत् करते प्रतीत होते और इस पूजा के समय भी अपनी धूनी में रह-रहकर आहुतियाँ देते रहते थे। कदाचित् परम्परा को जीवित रखने की भावना से ही वे कुल-पुरोहित की पूजा के वशवर्ती होते थे। इस दिवस पर सन्तूर तथा अन्य वाद्य-यन्त्रों का कर्ण-सुखद कार्य-क्रम बहुत ही सामान्य बात थी और वह अगले प्रातःकाल के तड़के तक चलता रहता था। जो लोग उनके जन्म-दिवस पर आते, उन सबको वे तिलक लगाते और मिश्री का प्रसाद तथा अपनी धूनी से भस्म भी देते थे। उस दिन वे बहुत ही कृपालु रहते और मुस्कुराते रहते थे। इस अवधि में उनके अनेक शिष्य बने। दीक्षा की उनकी विधि तिष्ठापन या दृष्टि-पात द्वारा उनकी चिलम के अंश-ग्रहण के साथ सम्पन्न होती थी किन्तु मौखिक शब्द द्वारा बहुत ही विरल रूप से होती थी। वास्तव में वे सभी लोग, जो आध्यात्मिक प्रगति के लिए आते, अपनी क्षमता और प्रवृत्ति के अनुसार उनकी कृपा प्राप्त करते थे।

(छ) अवधि—१९५७-६८ ई०

भगवान् जी की बहिन के दामाद की १९५७ में मृत्यु हुई

और उनकी छोटी पुत्री किश्नी जी ने भगवान् जी के पास आकर निवेदन किया कि 'अपने पिता की मृत्यु के बाद से हम लोग बड़े अकेलेपन और दुःख का अनुभव कर रहे हैं और हम लोगों की देख-भाल करनेवाला कोई नहीं है।' (क्योंकि उनकी माँ का भी पहले ही अवसान हो चुका था)। तुरन्त ही अपनी चिलम और ऊनी चादर लेकर अपनी बड़ी बहिन के साथ वे उनके मकान चन्दपोरा, श्रीनगर में चले गए और २८ मई, १९६८ तक जब उन्होंने महा-निर्वाण प्राप्त किया, वहीं निवास करते रहे।

जैसे ही वे उक्त मकान में पहुँचे, उन्होंने एक लोहे की सेंगड़ी (पात्र) में अपनी धूनी एक नियमित ढंग से प्रारम्भ कर दी और इसे वे प्रातःकाल से सायंकाल तक प्रज्वलित रखा करते थे। इस स्थान में भी, प्रारम्भ में, वे घण्टों तक लगातार कोयलों को फूँका करते। इस स्थान में रहते समय उन्होंने एक चौड़े मुख का मिट्टी का पात्र लिया, उसे पानी से भरा और उस पर एक पीतल की तश्तरी रखी तथा उसके अन्दर एक धातु का गिलास रखा, इन दोनों को भी उन्होंने पानी से भर दिया। इस पर स्थिर दृष्टि से एकाग्र होते हुए वे दिखाई दिए, मानों गिलास से निकलते हुए जल-वाष्प या किसी दीप्तिमान पदार्थ को, जिसे सामान्यतः हम नहीं देख सकते, वे देख रहे हों। यह स्पष्ट है कि वे जल-तत्व सम्बन्धी कार्य कर रहे थे। अपनी चिलम पीते समय आकाश की ओर स्पन्दन छोड़ते हुए वे, प्रतीत होता है, वायु और आकाश-तत्व-सम्बन्धी क्रिया करते थे।

प्रकृत रूप से लोग तीन स्थूल तत्वों अर्थात् पृथ्वी, जल और अग्नि को देख सकते हैं और वायु-तत्व को मात्र अनुभव कर सकते हैं किन्तु शेष चार सूक्ष्म तत्वों अर्थात् आकाश, मन,

बुद्धि और अहंकार की अनुभूति हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा नहीं की जा सकती । इनकी अनुभूति केवल उन्हीं के द्वारा की जा सकती है जिनके ज्ञान-नेत्र खुल गए हैं और जो इन तत्वों के भी रंग, रूप और क्रिया को देख सकते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि तत्वों के ऊपर उनका अधिकार होने से ही उन्हें अन्यथा असाध्य रोगों को अच्छा करने और मानव शरीर के मृतप्राय अंगों को पुनर्जीवित करने की क्षमता प्राप्त थी ।

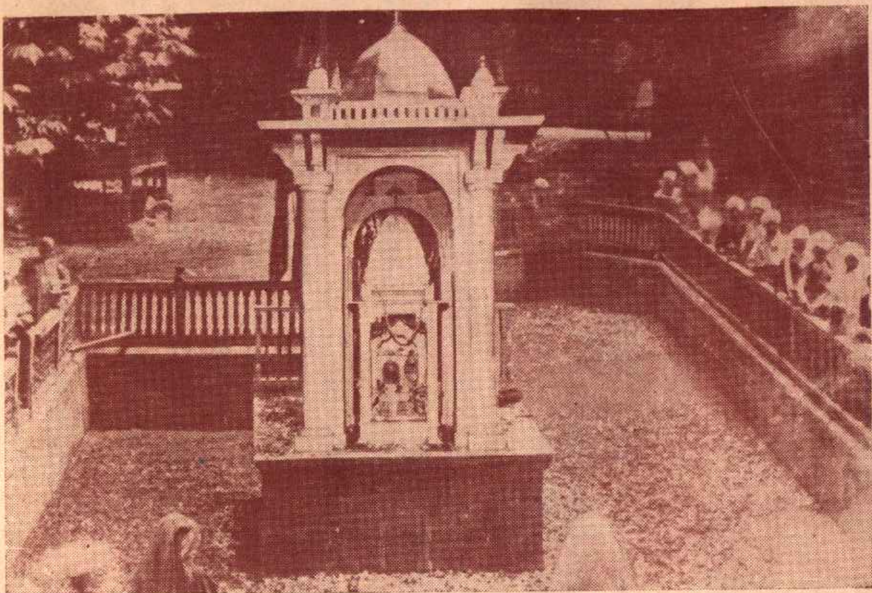
भगवान् जी त्रिकाल-द्रष्टा थे । कितनी स्पष्टता के साथ भविष्य को वे पहले से बता सकते थे इसका एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है। श्रीकण्ठ जू पेशिन नामक एक व्यक्ति, जो धार्मिक थे और भगवान् जी के पास प्रायः आया करते थे, बीमार हो गये। उन्होंने भगवान् जी के पास एक आदमी को यह निवेदन करने को भेजा कि 'मैं जानता हूँ कि मैं शीघ्र ही मरनेवाला हूँ किन्तु मैं अपनी मृत्यु की ठीक तारीख और समय जानना चाहता हूँ।' भगवान् जी ने सन्देशवाहक को बताया कि उनकी मृत्यु अगले बुधवार को ठीक ४ बजे सायंकाल को होगी। उसी तारीख को ठीक ४ बजे सायंकाल उनका देहावसान हो गया।

आध्यात्मिक रूप से उन्नत साधु जो प्रायः भगवान् जी के दर्शनार्थ आया करते थे, उनमें से कुछ ने बताया कि वे एक दुर्लभ सिद्ध थे। अन्यों ने कहा कि वे अवधूतावस्था में थे, जब कि अन्य लोगों ने कहा कि वे स्थित-प्रज्ञ थे और एक अन्य वर्ग ऐसा था, जिसके लिए वे एक कर्म-योगी थे। वे वास्तव में इन सभी विशेषताओं से युक्त प्रतीत होते थे।

इस अवधि में प्रति रविवार के अपराह्न में संगीतमय

आयोजन हुआ करते, जिनमें सन्तूर और सूफियाना गीत पं० वेधलाल दर, बद्रीनाथ कौल और अन्यों द्वारा गाए जाते। संगीत से वे अत्यधिक आनन्द लेते प्रतीत होते थे।





महाराज्ञी भगवती मन्दिर (क्षीरभवानी कुण्ड, तुलमुला, कश्मीर)

अध्याय—११

अन्तिम दिवस

भौतिक अस्तित्व के अन्तिम दो वर्षों में उनके व्यवहार की विलक्षणताएँ अनेक और विविध प्रकार की थीं।

भगवान् जी सामान्यतः अपने आसन के स्तर से लगभग २ फीट अधिक ऊँचा एक तकिया अपने पीछे और एक अपने दाहिनी ओर रखते थे। सामने उनकी लोहे की सेगड़ी तथा उनकी धूनी की अन्य सामग्री रहती थी। इस प्रकार यदि वे लेटना चाहते, तो केवल बाईं ओर वे अपने पैर फैला सकते थे। अपने महानिर्वाण के दो वर्ष पूर्व उन्होंने अपनी दाईं ओर भी ऊँचे तकिए जमवा दिए और इस प्रकार उनके पैर फैलाने या लेटने के लिए कोई स्थान नहीं रह गया। फल यह हुआ कि उनके घुटने टखनों की ओर मुड़े हुए जकड़ गए, जिससे वे खड़े नहीं हो सकते थे और इस प्रकार वे अपने आसन की बैठक से बँध से गए थे। बहुत कुछ ऐसी ही सलाह उन्होंने कश्मीर की एक अन्य सन्त श्रीमती राधा देवो (पत्नी श्री डी० एन० रैना) को गुप्तगंगा, श्रीनगर में दी थी, जब वे उनसे उस स्थान पर मिलने आई थीं।

राधा देवी ने पहले तो भगवान् जी द्वारा अपनी चिलम और अपने शरीर के विभिन्न अंगों से निकाले जानेवाले स्फुरणों की आलोचना करनी प्रारम्भ की। सन्तों की क्रियाओं में इतना अन्तर हो सकता है, यह सोचा भी नहीं जा सकता। वे अनुभव

सही नहीं कर सकीं कि यह सब क्या था । भगवान् जी ने उनसे कहा कि 'जाओ, अपने घुटने तोड़ डालो ।' अर्थात् यहाँ वहाँ घूमना बन्द करो और एक स्थान पर एक आसन ग्रहण करो । इस घटना के बाद राधादेवी ने अपने को अपने ताला लगे कमरे में बन्द कर लिया और कुछ वर्षों बाद अपनी मृत्यु के समय तक कमरे को नहीं छोड़ा । यह भी सूचना मिली है कि उन्होंने अपने पैरों में भी जंजीर डाल ली थी, किन्तु इसकी पुष्टि नहीं हुई है ।

महानिर्वाण के लगभग दो वर्ष पूर्व भगवान् जी कभी कभी अचानक कहा करते कि 'मैं वृद्ध हो गया हूँ ।' यह एक परोक्ष संकेत था, जिसे ख्वाजा लसा साहिब और स्वामी सोना काक जैसे कश्मीर के महान् सन्तों ने भी इस भौतिक संसार से बिदा होने से पूर्व दिया था ।

भगवान् जी की महा-समाधि के डेढ़ मास पूर्व एक भक्त उनकी शारीरिक दशा को देखकर व्यथित हुआ और अपने मन में सोचने लगा कि कदाचित् वे अपना शरीर छोड़ देंगे । भगवान् जी ने उसके विचार का अनुमान कर उससे कहा कि 'अमर छा मरान ?' (क्या अमर मरता है) अर्थात् वह नहीं मरता ।

श्री श्रीधर जू धर को स्मरण है कि भगवान् जी की महा-समाधि के कुछ दिनों पूर्व वे उनके स्थान पर प्रातःकाल गए थे और देखा कि वे बहुत निर्बल हो गए हैं । उनके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में पूछने पर भगवान् जी ने कहा कि 'मैं अब क्षीर-भवानी के पास जाना चाहूँगा ।'

महा-निर्वाण के कुछ मास पूर्व उनकी जननेन्द्रियों में सूजन आ गई थी । मैंने उनसे पूछा कि 'यह सूजन क्यों बनी हुई है ?' उन्होंने कहा कि 'इस शरीर का और क्या होगा ? इसके टुकड़े-

टुकड़े नष्ट हो जायँगे।' इसके पहले कई अवसरों पर उनके चेहरे, पैरों आदि पर सूजन हुई थी और लोगों ने सोचा था कि उनके अंतिम दिन पास हैं, किन्तु वे सूजनें इस प्रकार चामत्कारिक ढँग से रातों रात ऐसी लुप्त हो जाती थीं कि प्रत्येक व्यक्ति आश्चर्य-चकित रह जाता था।

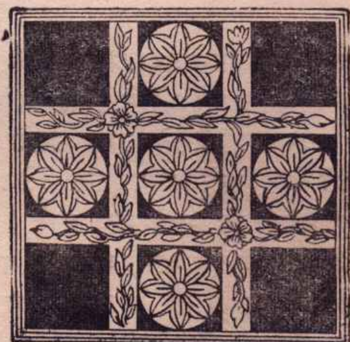
जब कभी भगवान् जी को ज्वर होता, वे अपनी धूनी में उबाला हुआ गर्म पानी लिया करते। विरल अवसरों पर वे एक जल-क्वाथ (काढ़ा) लेते थे, जिसमें कहज़बान (मेक्रोटोमिया बेन्थामी) की पत्तियाँ उनकी धूनी में उबाली जाती थीं, उसके सिवा अन्य कुछ भी नहीं लेते थे। उनकी महा-समाधि के पूर्व भक्तों ने उनसे स्वच्छन्द मूत्र-प्रवाह के लिए गोलियाँ लेने की प्रार्थना की, किन्तु उन्होंने तुरन्त ही अस्वीकार कर दिया। अपने जीवन के पिछले ३० वर्षों में उन्होंने कोई औषधि नहीं ली थी।

प्रति वर्ष भगवान् जी भाँग तथा अन्य मादक पौदों को प्राप्त करते और उन्हें लोहे की तश्तरियों में पानी के साथ उबालते, फिर उबले हुए मिश्रण को पीसते तथा उसके बड़-बड़े गोले बनाते, उन्हें सुखाते और उन्हें अलग रख देते। इन गोलों को तम्बाकू के साथ वे अपनी चिलम के काम लाते, किन्तु इन गोलों में कोई नशा नहीं था। वे इन गोलों को बहुत पवित्र मानते थे और जिस किसी को इन गोलों के तैयार करने में सहायता करने की अनुमति मिलती थी, उसे भगवान् जी भाग्यवान् समझते थे। अपने जीवन के अन्तिम दो वर्षों में उन्होंने किसी पौदे-पत्ती को उक्त उद्देश्य के लिए नहीं मंगाया।

प्रति रविवार को वे संगीत-आयोजन रखते थे। संगीतज्ञ लोग रात में देर तक गाने के बाद अपने आप ही 'कार्य-क्रम

समाप्त कर देते थे, किन्तु अपने सारे जीवन में उन्होंने कभी किन्हीं संगीतज्ञों को गाना बन्द करने को नहीं कहा। किन्तु २६ मई को इस पृथ्वी पर उनके अन्तिम रविवार के दिन उन्होंने संगीतज्ञों को कार्य-क्रम बन्द करने का निर्देश करते हुए कहा कि 'अब हम और कोई संगीत नहीं सुनेंगे।'

अपने महा-निर्वाण के एक मास पूर्व उन्होंने कहा कि 'अब धूनी आवश्यक नहीं है।' किन्तु जब भक्तों ने उनसे इसे प्रज्वलित रखने की अनुमति देने की प्रार्थना की, तब उन्होंने आपत्ति नहीं की।



अध्याय—१२

महा-निर्वाण

भगवान् जी ने २८ मई, १९६८ ई० (अर्थात् ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया) को ५-४५ बजे सायंकाल महा-समाधि में प्रवेश किया। अनेक व्यक्ति, जो उस दिन लगभग उसी समय उनके दर्शन करना चाहते थे, जिनमें उनकी छोटी बहिन (बड़ी बहन १९६५ के वर्ष में दिवंगत हो चुकी थीं) भी थीं, किसी न किसी कारणवश पहुँच नहीं पाये। ऐसा कदाचित् इसलिये हुआ क्योंकि देह-त्याग करते समय वे अशान्त होना नहीं चाहते थे। लेखक को लेकर केवल तीन व्यक्ति उपस्थित थे और इन्होंने उनके भौतिक अवशेष को छोड़ने का दृश्य देखा।

उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन के प्रातःकाल उन्होंने सदा की भांति अपना मुंह धोया, अपना साफा बांधा, तिलक लगाया और अपनी बाईं ओर झुके हुये रहे। कुछ लोग उनके दर्शनार्थ आये थे। यद्यपि जो लोग उन्हें देखने आये उनकी ठीक संख्या ज्ञात नहीं है। मेरा कनिष्ठ पुत्र, जो कश्मीर के बाहर से आया था, उन्हें प्रणाम करने हेतु लगभग २ बजे अपराह्न में गया। उसे उन्होंने यह कहते हुये आशीर्वाद दिया कि 'तुम इंजीनियरिंग परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करोगे, उसके शीघ्र बाद ही नौकरी पाओगे और कश्मीर के बाहर विवाह भी हो जायगा' और उसे असामान्यतया बहुत अधिक मात्रा में प्रसाद दिया। ये सारी बातें बाद में सत्य निकलीं।

लगभग ३ बजे सायंकाल तीन साधु आये और भगवान् जी

ने अपनी कपड़े की थैली अपने एक भक्त की ओर फेंकी और उससे कहा कि उनमें से प्रत्येक को एक रुपया दे दो। ऐसा किया गया। तब उन्होंने अपनी चिलम के कुछ कश लिये, यद्यपि धूम्र-पान करने में उन्होंने कठिनाई अनुभव की। एक भक्त बद्रीनाथ कौल खुडबल्ली उनके लिये चाय बनाने लगे, किन्तु उन्होंने कहा कि 'अब हम कोई चाय नहीं लेंगे।' तब वे ५-३० बजे सायंकाल तक समाधि में रहे और तब उन्होंने पानी माँगा। लगभग एक गिलास शरबत उन्हें पिलाया गया। ५-४५ बजे सायंकाल उन्होंने मन्द स्वर में 'ॐ नमः शिवाय' का उच्चारण किया और असीम प्रेम भरी दृष्टि से चारों ओर उपस्थित लोगों की ओर देखा। तब उन्होंने आंखें बन्द कर लीं और सब कुछ समाप्त हो गया। इस समय उनकी आंखों में एक प्रकार का तेज उत्पन्न हो गया था और बाईं आंख कुछ विस्तृत भी हो गई थी। एक डाक्टर बुलाया गया और उसने शारीरिक क्रियाओं की निवृत्ति होने की पुष्टि की।

शीघ्र ही समाचार फैल गया और लोगों की भीड़ कमरे में आने लगी। निचले तल्ले का सारा भाग और उनके घर को जानेवाला मार्ग भीड़ से परिपूर्ण हो गया। कुछ लोग क्रन्दन कर रहे थे, मानों उनके पिता न रहे हों, अन्य लोगों ने अपने मार्ग-दर्शक देवता, उपकारक के वियोग पर विलाप किया और कहा कि 'हमारी सारी आशाएं धूल में मिल गईं। अब हमारा हित देखनेवाला कोई नहीं रहा।' कुछ लोगों ने कहा कि 'हमारा भविष्य शून्य हो गया।'

अनेक लोगों ने उनके मुख में चम्मच भर जल डालकर दिवंगत आत्मा को अन्तिम पेय प्रदान किया और यद्यपि ऐसा न करने की सलाह दी गई, किन्तु लोग फिर भी उनकी रहस्य-

मय उक्ति "अमर छा मरान" अर्थात् 'जो अमर है, वह क्या मरता है ?' का अर्थ न समझते हुये आग्रह करते ही रहे।

कुछ मर्मज्ञ पुरुषों ने लोगों को समझाया कि 'भौतिक शरीर की मृत्यु के बाद भी वे अपने सत्-चित्-स्वरूप में जीवित हैं और अमर होने के कारण वे सदा आप सबके बीच विद्यमान रहेंगे और न केवल आध्यात्मिकता के उच्चतर क्षेत्र तक पहुँचने में अपितु आज से पूर्व की भांति आपके सांसारिक लक्ष्यों की पूर्ति में भी आपका मार्ग-दर्शन करेंगे। हमें अपने हृदय को शान्त कर, सबके प्रति प्रेम-भाव और किसी से भी द्वेष न कर उनके दर्शनों के लिये अपने अन्तर में देखना होगा और हम उन्हें पा जायँगे।' इस कथन की पुष्टि भी उनकी मृत्यु के बाद के वर्षों में हुई क्योंकि कुछ लोगों ने भाव-समाधि की दशा में अलौकिक रूप में उनके दर्शन प्राप्त किये और अन्य लोगों ने अपने स्वप्नों में उन्हें सस्मित और दयापूर्वक दृष्टिपात करते हुये देखा। भगवान् जी की संगमरमर की प्रतिमा, जो उसी के निमित्त निर्मित आश्रम में स्थापित है और जहाँ प्रातः तथा सायं प्रार्थनाएँ हुआ करती हैं, अनेक साधकों और सामान्य लोगों के तीर्थ-स्थान और सत् प्रेरणा प्राप्त करने का एक पवित्र स्थल बन गया है। वे लोग यहाँ शान्ति प्राप्त करते हैं और उनकी सांसारिक कामनाएं भी पूर्ण होती हैं।

अगले दिन अर्थात् २६ मई को उनके भक्तों और कुटुम्बियों के बीच एक विवाद प्रारम्भ हो गया। कुटुम्बी-जन नियमित क्रिया-काण्ड करना चाहते थे। उनका तर्क था कि भगवान् राम ने ऐसा ही किया था। भक्तों का कहना था कि भगवान् जी जीवन्मुक्त थे, अतः 'क्रिया' आवश्यक नहीं है। तथापि उनकी बहिन और कुटुम्बियों की ही बात रही और कर्म-काण्ड के अनु-

सार प्रथम १२ दिनों तक ग्रौर बाद में वर्ष भर समय-समय पर 'क्रिया'-सम्बन्धी कर्म उनकी बहिन के पौत्र द्वारा सम्पन्न किये गये क्योंकि भगवान् जी ने स्वयं उसको यज्ञोपवीत-सम्पन्न किया था, जिससे वह उनका दत्तक पुत्र माना जाता था। प्रथम १२ दिनों तक नियमित रूप से भोज की व्यवस्था बनी रही।

शाल ग्रौर फूलों से लपेटे हुये शव की यात्रा जलूस के साथ २६ मई १९६८ को लगभग १२-३० बजे ग्रपराह्ण में चली ग्रौर जिस मकान में भगवान जी निवास कर रहे थे उसके पार्श्व में स्थित 'पार्क गार्डेन' में ग्रारती उतारी गई, जहाँ लगभग ५००० व्यक्ति एकत्र हो गये थे। इसके बाद जलूस धीरे-धीरे श्मशान-स्थल की ग्रोर चला। मार्ग में जलूस बढ़ता गया और छज्जों, खिड़कियों आदि से लोग पुष्प-वर्षा करते रहे। श्मशान-स्थल पर जलूस के पहुँचने के समय तक सभी जातियों के लगभग २०,००० लोग एकत्रित हो गये। इतना वृहत् जन-समूह श्मशान-स्थल में किसी की स्मृति में नहीं देखा गया था। शीघ्र ही लोग भजन-मण्डलियों ग्रौर सत्संग-दलों में विभक्त हो गये। ग्रन्य लोग इतने दुखी थे कि वे कुछ भी करने में ग्रसमर्थ थे और नीचा सिर किये बैठे रहे। सारा दृश्य विक्षोभ-कारक था, किन्तु चारों ग्रोर शान्ति छाई रही। निर्वाण-कर्म पण्डितों ने लगभग ५ बजे सायंकाल प्रारम्भ किया, जो लगभग १० बजे रात्रि में समाप्त हुग्रा, जब कि उनके ग्रवशेष चिता पर रखे गये ग्रौर तब वह प्रज्वलित की गई।

कुछ दिनों बाद ग्रस्थियां चुन ली गई और भस्म तथा ग्रस्थियों का एक ग्रंश श्रीनगर से १० मील दूर शादीपुर में झेलम ग्रौर सिन्धु नदियों के सङ्गम में विसर्जित किया गया तथा उसका कुछ अंश हरिद्वार गंगा में विसर्जन हेतु सुरक्षित

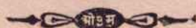
रखा गया। यह कार्य ७ मास बाद सम्पन्न हुआ।

श्मशान-स्थल पर जो व्यक्ति शव का दाह करता है, उसने कहा कि 'यद्यपि मैं अब तक हजारों शरीरों को दग्ध कर चुका हूँ किन्तु जैसा 'पुरुष' (मेरुदण्ड-पंजर) पूर्ण आकार का और समूचा इस अवसर पर शेष निकला, वैसा मैंने कभी नहीं देखा।'

इस अवसर पर बोलते हुये कश्मीर के एक रहस्यमय सन्त स्वामी नन्दलाल जी ने अश्रु-पूरित नेत्रों के साथ कहा कि 'कश्मीर एक भूकम्प से कम्पित हो रहा है और आज मेरे कन्धों पर एक महान् उत्तरदायित्व डाल दिया गया है।'

भगवान् जी के महा-निर्वाण दिवस के चार या पाँच दिन पूर्व उक्त स्वामी जी एक भक्त के साथ स्वयं ही अपने आप भगवान् जी के निवास-स्थान से मिले हुये एक स्थान पर गये थे और भगवान् जी के कमरे की खिड़की की ओर देखते हुये विलाप करने लगे और कहा था कि 'आप हमें क्यों छोड़ रहे हैं और महान् उत्तरदायित्व का ऐसा बोझ मुझ पर क्यों डाल रहे हैं?' स्वामी जी जहाँ रहते थे, वहाँ से वह मार्ग दिखाई पड़ता था, जिससे होकर शव का पताका-युक्त जलूस निकला। उन्होंने स्वयं मकान की एक ऐसी खिड़की पर स्थान ग्रहण किया (क्योंकि वे चलने में असमर्थ थे), जहाँ से वे जलूस को अच्छी तरह देख सकें।

इस प्रकार हमारे युग के एक श्रेष्ठतम सिद्ध ने, जिन्होंने एक साधारण मर्त्य मनुष्य के समान जीवन आरम्भ किया, देवत्व प्राप्त किया और अन्त में अमरत्व की ओर महा-प्रस्थान कर वे परमात्मा में लीन हो गये।



अध्याय—१३

चमत्कार

सन्तों और महापुरुषों द्वारा किये गये चमत्कारों का उल्लेख करना उचित नहीं है क्योंकि एक तो वे स्वयं प्रचार से दूर रहते हैं और दूसरे उनके द्वारा किये गये चमत्कारों से उनकी समीक्षा सम्भव नहीं है तथा उनमें से कुछ इस प्रकार के प्रदर्शनों के विरुद्ध होते हैं क्योंकि वे प्रकृति के कार्य में हस्तक्षेप करना नहीं चाहते। सामान्यतः सन्त लोग अष्ट-सिद्धियों की उपेक्षा करते हैं और उन्हें आध्यात्मिक उन्नति में बाधक मानते हैं, किन्तु जब कोई सन्त परमात्मा का साक्षात्कार या शिवत्व प्राप्त कर लेता है, तब किसी की सहायता करने के लिये यदि वह चमत्कार करता है तो उससे उसका क्या बन-बिगड़ सकता है। सागर से कुछ धाराओं के बाहर निकल जाने से सागर में कोई अन्तर नहीं आता। भगवान् जी के सम्बन्ध में यही सत्य है।

भगवान् जी एक कर्मयोगी थे और उन्होंने देखा कि आधुनिक पीढ़ी भौतिकता में लिप्त है तथा ईश्वर और दैवी विधान में उसका विश्वास हिल रहा है तथा छिन्न-भिन्न हो रहा है। दुःखी मानवता के प्रति उनमें महती करुणा थी और उसके सहायतार्थ वे अपने गन्तव्य से अलग जाने को भी प्रस्तुत रहते थे। अपने स्वभाववश ही वे उस समय निरपेक्ष नहीं रह सके जब कि देश सङ्कट में था। १९४७ से आगे उन्होंने अस्त-व्यस्तता की स्थिति में व्यवस्था लाने के लिये महान् आध्यात्मिक प्रयास किया और ऐसा करने में उन्हें जो शारीरिक कष्ट

सहन करना पड़ा उसकी उन्होंने परवा नहीं की। खाना-पीना भूलकर अपने फेनल मुख और रक्त-रंजित नेत्रों के साथ वे अपनी चिलम और आहुतियों को अपना सतत सहयोगी बनाये रहे।

वे ऐसे सन्त नहीं थे जो धार्मिक प्रवचन किया करते हैं, अपितु अपने स्पर्श, दृष्टि, चिलम से भस्म या प्रसाद देकर वे उपयुक्त जिज्ञासुओं को अध्यात्म में प्रवृत्त करते थे। हमें वे बहुत ही व्यस्त प्रतीत हुये, इतने कि उन्हें किंचित् भी अवकाश नहीं था। ऐसा लगता था, मानों वे कोई कठिन परीक्षा देने जा रहे हों और उसकी तैयारी में लगे हों। अपने मन में जो संघर्ष वे छेड़े हुये थे वह कोई ऐसा खुला अध्याय नहीं था कि जो चाहे उसे पढ़ ले।

जिन चमत्कारों का यहाँ उल्लेख किया गया है, उनका अपना उद्बोधक महत्व है और उनसे विविध दशाओं में भगवान् जी के सर्वतोमुखी व्यक्तित्व का दर्शन मिलता है। यही कारण है कि वे उनके जीवन-चरित के अंगभूत बनाये जाने योग्य हैं और उनका उल्लेख करने के लिये मुझे यही उचित क्षमा-याचना प्रतीत होती है। न तो मैं और न ही कोई अन्य व्यक्ति इस बात की थाह ले सकता है कि वस्तुतः वे किन दिशाओं मेंकार्य कर रहे थे, किन्तु जैसा कि अन्य लोगों के द्वारा भी स्वीकार किया गया है, उनकी महान् तपस्या के कारण इस सङ्कट-काल में कश्मीर की घोर विपत्तियां टल गईं, जो कि उनकी साधना का प्रत्यक्ष क्षेत्र था।

सर्वप्रथम देश को प्रभावित करनेवाली घटनाओं का वर्णन किया जायगा क्योंकि उनसे प्रस्तुत विषय पर कुछ प्रकाश पड़ता है।

१९४७ के वर्ष में पाकिस्तानी आक्रामकों ने कश्मीर पर आक्रमण किया और जहाँ कहीं भी वे गये, उन्होंने हत्याएँ, बलात्कार, अग्निकाण्ड जैसे दुष्कर्म किये। वे श्रीनगर शहर की बाह्य सीमा तक पहुँच गये और लोग सहायतार्थ भगवान् जी के पास पहुँचे। उन्होंने उन्हें आश्वासन दिया कि 'आक्रामक नगर में नहीं प्रवेश करेंगे क्योंकि अष्ट भैरवों को शहर बचाने का काम सौंपा गया है, अपितु वे नगर के सातवें और अन्तिम पुल के पार ही रोक दिये जायँगे।' सचमुच ही भारतीय सेना ने छतबल चुंगी से बहुत दूर ही आक्रामकों को रोक दिया था।

आक्रमण के दो मास पूर्व भगवान् जी ने बारामूला में नियुक्त एक भक्त से कहा था कि 'तुम बारामूला से अपनी प्रत्येक वस्तु—घास का तिनका तक ले आना, क्योंकि वह सब तुमने अपनी गाढ़ी कमाई से खरीदा है।' उनकी दया से यह भक्त आक्रमण होने के पहले ही बारामूला से श्रीनगर को स्थानान्तरित कर दिया गया। उसे तब क्या मालूम था कि उन्होंने बारामूला से सब वस्तुएँ ले आने को उससे इसलिये कहा था क्योंकि वहाँ आक्रमण होनेवाला था और वह स्थान नष्ट हो जानेवाला था।

इस आक्रमण के कुछ समय बाद भगवान् जी हारि पर्वत पर श्री शारिका भगवती स्थापन को गये थे जहाँ एक चण्डी-हवन चल रहा था। जैसे ही लोगों ने उन्हें देखा वे उनके चारों ओर झुण्ड लगाकर खड़े हो गये और उनसे कश्मीर को बचाने की प्रार्थना की। उन्होंने उत्तर दिया कि 'कोई खतरा नहीं है क्योंकि मैं स्वयं युद्ध के सभी मोर्चों पर जाता हूँ।' अपनी एक स्वगतोक्ति में भगवान् जी यह कहते सुने गये थे कि 'सेना कर क्या रही है ? उन्हें इतना राशन मिलता है, फिर भी लद्दाखी

लामाओं के लिये वे कश्मीर को एक सीधा रास्ता नहीं खोलते।' किन्तु उनका संकेत किस ओर था, इसे समझने में हम लोग असफल रहे। नवम्बर १९४८ के महीने में भारतीय सेना ने ज़ोजीला दर्रे और इस मार्ग के करगिल नामक स्थान पर विजय प्राप्त की और लद्दाख के साथ एक सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया।

इस संघर्ष में भगवान् जी द्वारा सम्पादित भूमिका का रहस्योद्घाटन सैनिक पुलिस के एक अधिकारी ने, जो उक्त संघर्ष से सम्बन्धित था, किया। उसे मुख्य मोर्चे के कमाण्डर से यह सूचना मिली थी कि एक रहस्यपूर्ण व्यक्ति युद्ध-स्थल में जवानों को संकेत कर रहा है कि निर्दिष्ट दिशाओं की ओर गोली बरसाओ और वैसा करना सैनिक दृष्टि से सही सिद्ध हो रहा है। उक्त सैनिक पुलिस अधिकारी को उक्त व्यक्ति की पहचान के लिये उसकी रूपरेखा बताई गई थी और वह यह जानने को बहुत उत्सुक था कि क्या इस रूपरेखावाला कोई व्यक्ति (जिसको वह समझता था कि निश्चय ही कोई सन्त होगा) जीता-जागता विद्यमान है। उसने रैनावारी, श्रीनगर के श्री टी० एन० दर को पहचान के लक्षण सूचित किये। इस बीच श्री दर पहले ही भगवान् जी को रेशी मुहल्ले (श्रीनगर) में उनके निवास-स्थान में एक तकिए पर बैठे हुये और किसी अदृश्य व्यक्ति को अपने फैले हुये हाथों द्वारा इधर या उधर गोली चलाने का निर्देश देते हुये देख चुके थे।

श्री दर ने सैनिक पुलिस अधिकारी को सूचित किया कि वे उस सन्त को जानते हैं और उसकी प्रार्थना पर उन्होंने उसके साथ एक आदमी उसे भगवान् जी का स्थान दिखाने के लिये भेजा। यह सैनिक पुलिस अधिकारी छोटे क़द का एक स्थूल-

काय कृष्ण वर्ण व्यक्ति था। उसके चेहरे पर चेचक के दाग थे। वह ईसाई धर्म को माननेवाला था। उसने भगवान् जी के दर्शन किये और कहा कि 'भगवान् जी की रूपरेखा उस विवरण से पूर्णतया मिलती है, जिसे मुख्य मोर्चे के कमाण्डर ने उसके पास भेजा था।' मोर्चे के कमाण्डर ने यह भी कहा था कि उनकी इस विजय का श्रेय मुख्यतः उसी व्यक्ति (भगवान् जी) को है।

इस अवधि में भगवान् जी निरन्तर उपवास करते रहे। एक दिन उन्होंने नाई को बुलाया, अपना पूरा क्षौर करवाया, अपना उपवास तोड़ा और विश्राम की मुद्रा में पुनः अपने प्रकृत स्वरूप में आ गये। उसी दिन सायंकाल ज़ोजिला पर अधिकार होने का समाचार घोषित किया गया।

१९५६ के पतझड़ के अन्त में कश्मीर के लोग कश्मीर के भविष्य की अनिश्चितता के कारण आतङ्क में थे। बहुत बड़ी संख्या में लोग भगवान् जी से कश्मीर को बचाने की प्रार्थना करने आये। अपनी एक स्वगतोक्ति में उन्होंने कहा कि 'यदि सेना गई, तो कश्मीर ध्वस्त हो जायेगा'। इससे लोगों की चिन्ता और भी बढ़ गई। इस विषय पर यद्यपि प्रायः बहस छिड़ती, तथापि भगवान् जी ने कुछ समाधान नहीं किया, किन्तु वे पुनः दुगनी शक्ति से अपनी तपस्या में लगे रहे। एक सुहावने प्रातः-काल मैं जब उनके निवास-स्थान पर गया, तो उन्होंने स्वतः दृढ़तापूर्वक कहा कि 'देश और जनता के हित के लिये सेना कश्मीर में बनी रहेगी।' एक मास बाद १८ फरवरी, १९५७ को राष्ट्रसंघ की सुरक्षा-परिषद् ने कश्मीर में राष्ट्रसंघ के एक सैन्य-दल की उपस्थिति हेतु संयुक्त राष्ट्र अमरीका, यू० के०, आस्ट्रेलिया और क्यूबा द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव को स्वीकृत किया।

तथापि इस प्रस्ताव को रूस ने विशेषाधिकार द्वारा समाप्त कर दिया और परिस्थिति नाटकीय ढंग से बदल गई। इन वर्षों में वे प्राय: कहा करते थे कि 'कश्मीर क्षय (सिल्ल) की उग्र व्यथा में है। मैं इसके ऊपर बैठा हुआ हूँ और इसे विचलित नहीं होने दूंगा।'

भगवान् जी कुछ रहस्यमय रूप से हिन्द-चीन-युद्ध से भी सम्बन्धित प्रतीत होते थे। सितम्बर, १९६२ मास के लगभग वे भद्रकाली-पीठ में थे। जैसा कि अन्यत्र वर्णन किया जा चुका है, वे एक खुले स्थान में अपनी धूनी के पास बैठे हुये थे और अपनी बहिन तथा स्वामी अमृतानन्द को छोड़कर अपने सभी भक्तों को यह कहकर श्रीनगर को वापस भेज दिया कि 'क्या तुम नहीं देख रहे हो कि पर्वतों (तिब्बत की ओर) के उस पार क्या हो रहा है? उस ओर से आनेवाली हवा की एक फुंकार तुम्हें उलट देगी।' यह अवधि भी उनके लिये कठोर क्रिया-शीलता की थी।

लगभग ३ सप्ताह ठहरने के बाद वे श्रीनगर वापस आये, जब कि हिन्द-चीन युद्ध प्रारम्भ हो चुका था। श्रीनगर में रहते समय एक दिन रात्रि में ११ बजे उन्होंने अपनी बहिन को बताया कि 'मैं बाजार जा रहा हूँ।' उनके सङ्कल्प को अनुभव कर उन्होंने सहमति दे दी और वे एक ऊनी चद्दर में लिपटे हुये अपनी चिलम के साथ अपने घर से बाहर निकल पड़े। लगभग एक घण्टे के बाद वे ठण्ड से प्राय: जकड़े हुये वापस आये। अगले दिन वे कास-श्वास आदि से ग्रस्त हो गये। उन्होंने एक भक्त को, जिसने उनसे यह पूछने का साहस किया था कि पिछली रात को वे कहां गये थे, यह बताया था कि 'कुछ समस्याओं को तय करने के लिये तिब्बत को गया था।' कुछ ही

दिनों बाद युद्ध समाप्त हो गया।

१९६५ में भारत-पाकिस्तान युद्ध के प्रारम्भ होने के पूर्व भगवान् जी अपने आप ही पश्चिम (अर्थात् पूँछ, राजौरी, गुलमर्ग) की ओर संकेत करते थे कि 'वहाँ काल (मृत्यु) है।' उनका आशय, हम लोगों ने बाद में अनुभव किया, घुसपैठियों से था, जो इन क्षेत्रों में चुपचाप घुस आये थे और लूट-पाट, अग्नि-काण्ड, हत्याओं में तत्पर थे।

एक दिन सायंकाल, जब कि १९६५ में भारत-पाकिस्तान युद्ध चल रहा था, वे अपनी सामान्य लेटी हुई अवस्था से अचानक उठ खड़े हुये और कहा कि 'बड़ा संकट दिखाई देता है।' उन्होंने मिश्री निकाली, एक टुकड़ा अपने मुख में रखा और अपने सामने बैठे दोनों व्यक्तियों में से प्रत्येक को एक-एक टुकड़ा दिया तथा स्वयं से प्रश्न किया कि 'मैं श्रीनगर को बचाऊँ या दिल्ली को? ' फिर वे अचानक ही मौन हो गये। कुछ ही मिनटों बाद श्रीनगर के पास के हवाई अड्डे पर बम-वर्षा हुई किन्तु क्षति न्यूनतम रही। यह भी ज्ञात हुआ कि दिल्ली पर बम-वर्षा करने जानेवाला एक पाकिस्तानी विमान मेरठ के पास नीचे गिराया गया है।

युद्ध समाप्त होने के कुछ दिन पूर्व उन्होंने कहा था कि 'अब पश्चिम साफ है।'

अब मैं कुछ व्यक्तिगत मामलों का विवरण दूंगा, जिनमें भगवान् जी ने उस दुःख को कम करने में सहायता दी थी जिसका सामना कुछ लोग कर रहे थे। उल्लिखित घटनाएं प्रामाणिक हैं।

१-श्रीनगर के एक संगीत-सम्मेलन के उप-प्राचार्य श्री चून्नीलाल की पत्नी रक्त-कैंसर (ल्यूकोमिया) से पीड़ित थीं।

वे एक प्रख्यात चिकित्सा-विशेषज्ञ से चिकित्सा करा रही थीं। एक समय उनके रक्त-चित्र के आधार पर उनके चिकित्सक ने उनके बचने की सारी आशा छोड़ दी और उन्हें जो चाहे खाने-पीने की छूट दे दी क्योंकि उनका अन्त निकट था। निराश और दुखी श्री चून्नीलाल भगवान् जी के पास गए, उन्होंने अपनी धूनी में से भस्म की एक छोटी सी पुड़िया दी। अपनी आंखों से अश्रु-पात करते हुये उन्होंने भगवान् जी से पूछा कि 'मेरी मरणासन्न पत्नी को यह भस्म क्या करेगी ?' प्रत्यक्षतः द्रवित भगवान् जी ने उन्हें उनको भस्म देने की सलाह दी। श्री चून्नी-लाल भस्म के प्रभाव के प्रति अत्यधिक संशय के साथ उसे अपने घर ले गये। तथापि उन्होंने अपनी मां को बताया कि भगवान् जी ने उनकी पत्नी के लिये भस्म दी है। उनकी मां ने उनके हाथों से भस्म छीन ली और उसमें से कुछ रुग्णा की जीभ पर रख दी और शेष उसके शरीर में लगा दी। तुरन्त ही रुग्णा को नींद आ गई। दो या तीन घण्टे बाद जगने पर उसने शिकायत की कि वह भूखी है। रात अधिक बीत गई थी, अतः वे लोग केवल दूध ही पा सके और उसे पिला सके। अगले दिन भी उसने भूख की शिकायत की। यद्यपि उसे पर्याप्त भोजन दिया जा चुका था। रुग्णा की दशा में हुये परिवर्तन की सूचना देने के लिये श्री चून्नीलाल चिकित्सक के पास गये। उन्होंने सलाह दी कि रुग्णा को रक्त की ताजी जाँच कराने के लिये अस्पताल ले जाया जाय। जाँच से सामान्य रक्त-चित्र निकला जिसमें कैंसर का कोई चिह्न नहीं था। चिकित्सक उलझन में पड़ गया और उसने श्री चून्नीलाल से पूछा कि 'आपने क्या किया और रुग्णा किस प्रकार अच्छी हुई ?' श्री चून्नीलाल जी ने भगवान् जी द्वारा दी गई भस्म की कथा सुनाई। श्री चून्नी-

लाल का कथन है कि फलस्वरूप उक्त चिकित्सक भी भगवान् जी के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने गये।

२–दिल्ली की एक महिला ग्रामाशय-गुर्दा-दाह (यक्ष्मी) से पीड़ित घोषित की गई। जांच से प्रकट हुआ कि मूत्राशय के संक्रमण में तीव्र वृद्धि होने से स्वस्थ मांस-तन्तु प्रभावित हो रहे हैं। उक्त महिला के एक सम्बन्धी ने उसे बचाने के लिये श्रीनगर में भगवान् जी से सम्पर्क स्थापित किया क्योंकि उसकी मृत्यु का अर्थ था उसके तीन छोटे बच्चों का सर्वनाश। भगवान् जी द्रवित हो गये। उन्होंने अपनी चिलम भरी और आधे घण्टे तक धूम्र पान किया और कहा कि 'जाओ, महिला बच गई।' बाद में महिला के पति ने सूचित किया कि जांच से प्रकट हुआ कि उसके मूत्राशय में सुधार हुआ है और वह अच्छी हो रही है। यद्यपि तब से १५ वर्ष बीत चुके हैं, वह महिला गृहिणी का सामान्य जीवन बिता रही है।

३–लगभग १० वर्ष पूर्व भगवान् जी के भक्तों में से एक हृद्रोग और दुर्दमनीय क्षुधा से पीड़ित था तथा बड़ी अस्वस्थ दशा में था। वह बम्बई गया और हृद्-विज्ञान के एक प्रोफेसर से अपनी व्यापक जांच कराई। औषधि निर्दिष्ट और प्रयोग की गई किन्तु उसका अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। वह कश्मीर को लौटा और एक दिन भगवान् जी के समक्ष बैठा था कि उन्होंने स्वतः उसे बताया कि 'मैंने तुम्हारे हृदय और उदर को पुनर्नवीन कर दिया है।' भक्त अच्छा हो गया। अगले जाड़े में वह बम्बई गया और उसी हृद्-विशेषज्ञ से अपनी जांच पुनः कराई, जो उसके हृदय में कोई दोष न पाकर चकित हो गया और उसने भक्त से कहा कि 'मैं इस वर्ष तुम्हारे हृदय में रोगात्मक परिवर्तन की अपेक्षा कर रहा था। क्या तुमने अपने हृदय के

लिये मेरे द्वारा निर्दिष्ट औषधि का सेवन किया था ?' यह सूचित किये जाने पर कि निर्दिष्ट औषधि का सेवन नहीं किया गया, चिकित्सक ने जानना चाहा कि यह चामत्कारिक परिवर्तन कैसे हुआ। भक्त ने उन्हें सूचित कि ऐसा 'दैवी कृपा' से हुआ। इससे चिकित्सक और भी अधिक चकित तथा हैरान रह गया।

४—भगवान् जी के भक्तों में से एक की जांघ की हड्डी का शीर्ष भाग टूट गया। रोगी के सम्बन्धी भगवान् जी के पास पहुँचे और यह जानना चाहा कि क्या उसे अस्पताल ले जाया जाय। उन्होंने उन्हें बताया कि 'उसे अपने कमरे में विश्राम करने दो। मैं स्वयं ही उसे अच्छा करूँगा।' घटना के एक मास के बाद उन्होंने रोगी के सम्बन्धियों से उसे अपने स्थान पर लाने को कहा। वह एक स्ट्रेचर पर लाया गया और कुर्सी पर उसे रखकर भगवान् जी के समक्ष ले जाया गया। उन्होंने उसे कुछ दिनों तक अपने सामने के कमरे में विश्राम करने को कहा। एक दिन भगवान् जी उसके कमरे में गए और रोगी को उठाकर कुछ कदम चलने में सहायता दी। उन्होंने उससे बैशाखी की सहायता से चलने का अभ्यास स्वयं करते रहने को कहा और कुछ दिनों बाद उसे घर जाने का निर्देश दिया। वह अब बिलकुल अच्छा है और लम्बी दूरी तक चल सकता है, यद्यपि कुछ लंगड़ाहट के साथ।

५—उनके भक्तों में से एक काले दस्तों के रोग से बुरी तरह अस्वस्थ हो गया और भगवान् जी की स्वीकृति के बिना ही उसके सम्बन्धी उसे अस्पताल ले गए। कुछ दिनों बाद भगवान् जी ने रोगी के एक सम्बन्धी को उसे अस्पताल से वापस लाने की सलाह दी और कहा कि 'शेष मैं करूँगा।' उन्होंने यह भी सलाह दी कि रोगी को 'चने की दाल और

चावल' दिया जाय। चिकित्सक ने भी इसी आहार का सुझाव दिया था।

६—२६-११-१९६६ को भगवान् जी के भक्तों में से एक पण्डित प्राणनाथ कौल, जो उनके पुनीत कार्य को अग्रसर करने के कारण एक भाग्यवान् व्यक्ति प्रतीत होते हैं, सदा की भाँति उनके समक्ष बैठे हुए थे कि उनका भाई भागता हुआ और घबराया हुआ आया और उसने प्राणनाथ जी से बताया कि 'पिताजी को नाक से (जो पिछले दो दिनों से नाक से रक्त-स्राव के हलके प्रकोप से पीड़ित थे) बहुत अधिक रक्त बहने लगा है और उनकी दशा ख़राब होती जा रही है। आप तुरन्त चिकित्सक लेकर घर चलें।' भक्त चिन्ता में पड़ गया और सोचने लगा कि इस समय चिकित्सक कहाँ मिलेगा। उन्होंने भगवान् जी को सूचित किया। वहाँ बैठी एक महिला ने भगवान् जी से उन्हें अच्छा करने का अनुरोध किया। भगवान् जी ने अपने सामने पड़ी चाय की हरी पत्तियों में से कुछ पत्तियाँ प्राणनाथ जी को दीं और उनसे बताया कि 'इस चाय का काढ़ा चीनी में मिला कर रोगी को दिया जाय।' प्राणनाथ जी भगवान् जी के ही स्थान पर बैठे रहे और अपने भाई को चाय घर ले जाने को दे दी। रोगी ने जैसे ही चाय के कुछ घूँट पिए, रक्त-स्राव बन्द हो गया और अगले दिन वे बिलकुल ठीक थे।

७—दिसम्बर, १९६३ में दरगाह शरीफ हजरत बल से पवित्र स्मृति-चिह्न चुरा लिया गया और श्रीनगर तथा उसके आस-पास के क्षेत्रों में बड़ी अशान्ति छा गई। सामान्य जीवन पंगु हो गया और स्थिति शासन के नियंत्रण से बाहर जाती प्रतीत हुई। साम्प्रदायिक उपद्रव और हिंसा की आशंका उत्पन्न

हो गई। भगवान् गोपीनाथ जी ट्रस्ट के सदस्यों में से एक पण्डित शम्भुनाथ भान और अन्य लोग सहायतार्थ भगवान् जी के पास पहुँचे। इस अवसर पर प्राणनाथ जी उपस्थित थे और उन्होंने भी भगवान् जी को यह स्पष्ट करने में उनका साथ दिया कि यदि पवित्र चिह्न का पता न चला और पुनः अपने स्थान पर उसे न रखा गया, तो सभी लोग सङ्कट में पड़ जायंगे। कुछ रुकने के बाद भगवान् जी मुस्कराए और कहा कि 'कोई संकट नहीं है। पवित्र चिह्न शीघ्र ही लौटा दिया जायगा।' अगले ही दिन यह घोषणा की गई कि पवित्र चिह्न वापस कर दिए गए हैं। इसकी सत्यता की पुष्टि शालीमार के ख्वाजा मीरक शाह साहिब तथा अन्यों के द्वारा की गई।

८—भगवान् जी के एक भक्त के गले में दीर्घ काल से कष्ट था। चिकित्सकों को सन्देह था कि यह किसी सांघातिक वृद्धि के कारण था। भगवान् जी ने उसे एक निराली चिकित्सा बताई, जो सफल हुई। उन्होंने उससे ईंट के छोटे टुकड़े इकट्ठा करने, उन्हें धूप में गरम करने और उन गरम टुकड़ों से अपना गला सेंकने को कहा। वह बिलकुल अच्छा हो गया।

९—एक धर्मात्मा किन्तु धनी महिला (जो भगवान् जी की भक्त थी) का पति यकृत के रोग से पीड़ित हुआ। महिला ने उनसे उसे अच्छा करने की प्रार्थना की। यद्यपि प्रार्थना कई बार की गई, किन्तु भगवान् जी ने कोई उत्तर नहीं दिया। तथापि एक दिन उन्होंने महिला से अपने पति को अपने साथ अपने स्थान पर ले आने को कहा।

महिला का पति अनिच्छा से सहमत हुआ और जब वह भगवान् जी के स्थान को जाने के लिए कार में बैठा, तो अचानक ही वह कार से बाहर निकल आया और नहीं गया। बाद

के अवसरों पर भी वहाँ जाना उसने अस्वीकार कर दिया। शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई।

अपने पति की मृत्यु से पूर्व रात्रि में वह महिला भगवान् जी के दर्शन को आई। उसने उसकी भूख की कमी की शिकायत की। उन्होंने उससे उसे चाय देने को कहा और मेरी उपस्थिति में यह भी कहा कि 'पण्डितों ने कथा प्रारम्भ कर दी है।' इसका आशय यह था कि उक्त व्यक्ति का अन्त निकट था क्योंकि किसी व्यक्ति के मरने पर १० दिन तक पाठ की जानेवाली राम-कथा को पण्डितों ने आरम्भ कर दिया था।

उक्त महिला १५ वर्षों से अधिक समय से उनकी बड़ी भक्त थी और अस्थमा तथा अधिक रक्त के दबाव से पीड़ित होने पर भी अपना जीवन व्यतीत करती थी। एक दिन उन्होंने उसे मेरी उपस्थिति में बताया कि 'तुम्हारी बीमारी मेरी एक टांग में सो रही है।' उन्होंने अपनी दाहिनी टांग में एक स्थान की ओर इंगित भी किया, किन्तु हम लोग वहाँ कुछ देख नहीं सके। १९७२ के वर्ष में, अपने महानिर्वाण के चार वर्ष बाद, उन्होंने उसे स्वप्न में अपने दर्शन दिये और उसे एक बड़ी पपड़ी (चर्म-रोग-जन्य) युक्त अपनी टांग को दिखाया और फिर उस टांग को अपनी फिरन (चोला) के नीचे रख लिया। इसका तात्पर्य यह था कि वे उसकी बीमारी को ग्रहण कर अपने महानिर्वाण के बाद अब भी उसके शारीरिक हित की देख-रेख कर रहे हैं।

ऐसे दो या तीन मामले हमारी दृष्टि में आये हैं, जिनमें भगवान् जी ने रोगियों को अपने समक्ष आने को कहा। जो किसी कारणवश उनके सामने पहुँचने में असफल हुये, वे समाप्त हो गये, किन्तु जो पहुँच गये, वे अच्छे हो गये।

१०—हृद्रोगियों को अच्छा करने का उनका विलक्षण ढंग था। रोगी जब उनके समक्ष बैठा होता, वे स्वयं अपनी दोनों कलाइयों को नाड़ी को बारी-बारी से कुछ मिनट तक अनुभव करते और रोगी अच्छा हो जाता। कुछ रोगियों को उन्होंने तेल-मालिश कराने की सलाह दी, स्नान के पूर्व नहीं—बाद में।

११—श्री शिब्बनलाल तुर्की ने, जो भगवान् जी के भक्त हैं और प्रतीत होता है कि पूर्व-जन्मार्जित आध्यात्मिकता का अच्छा सञ्चय रखते हैं तथा ईश्वर-साक्षात्कार के पथ पर सुस्थित हैं, भगवान् जी सम्बन्धी अपने निजी अनुभवों को निम्न प्रकार सूचित किया है—

(क) एक दिन मैं भगवान् जी के पैर एक घण्टे तक दबा चुका था कि मेरे मन में इस उत्तम सेवा के करने का सौभाग्य पाने का अहं उत्पन्न हो गया और मैं इसी सम्बन्ध में सोच रहा था कि भगवान् जी बोले कि 'अरे मूर्ख, मेरे पैर दबाने की सनक में तुम मस्त हो रहे हो, जब कि ये केवल लकड़ी के टुकड़े हैं।' यह सुनकर मेरी आंखें खुल गईं और मैं उनके पैरों पर गिर कर उनसे क्षमा मांगने लगा। भगवान् जी से कुछ भी, मन का विचार तक, क्षण भर के लिये भी छिपा नहीं था।

(ख) मैं बी० एस-सी० में पढ़ रहा था। एक दिन मैंने एक नई कमीज और पैंट पहना। इस वेश-भूषा से मेरे व्यक्तित्व की आभा बढ़ गई। मेरे कालेज के मित्र मुझसे ईर्ष्या करने लगे। इससे मेरा अहंकार और भी बढ़ गया और मैंने सोचा कि मैं जिससे चाहूं, उसी लड़की से प्यार कर सकता हूँ। इसके सिवा अन्य भी निकृष्ट विचार मेरे मन में आये। इस घटना के लगभग एक सप्ताह बाद मैं भगवान् जी के दर्शनार्थ गया और उन्होंने अपनी मोहक शैली में न केवल मेरे मित्रों

द्वारा मेरे विषय में कहे गये वाक्यों को दुहराया, अपितु मेरे गन्दे विचारों को भी बता दिया। मैं सिर से पैर तक पसीना-पसीना हो गया। यदि मैं भगवान् जी की दयालुता को न जानता होता, तो मूर्छित हो गया होता। तथापि मैं स्तब्ध हो गया और अपनी जगह से हिल तक न सका। उन्होंने आगे कहा कि 'इस शरीर में गन्दगी, कफ, मूत्र और मल के सिवा रखा क्या है ? और मनुष्य के किस द्वार से कोई अच्छ वस्तु बाहर निकलती है ? ऐसी दशा में यह अहं-भाव क्यों ?' ये शब्द कहने के बाद वे चुप हो गये।

(ग) भगवान् जो से अनुमति लिये बिना मैं एम० एस-सी० में प्रवेश प्राप्त करने के लिये आगरा गया था। मैं सम्बन्धित विभागाध्यक्ष से मिला, जो मुझे दिन-प्रतिदिन टालते रहे और मुझे मैदानों की झुलसती गर्मी में आगरे में ठहरे रहना पड़ा। क्योंकि मैंने घर को लिखकर कोई सूचना नहीं दी, मेरी मां चिन्तित होकर भगवान जी के पास मेरी कुशल और मेरा पता जानने के लिये पहुँचीं। जैसे ही उन्होंने इस विषय में बताया, भगवान् जी ने बड़ा रोष प्रकट किया और कहा कि 'बेचारा लड़का इधर-से-उधर भटक रहा है और एक चौराहे पर एक इमारत में (वास्तव में मैं यहीं था) ठहरा है। किन्तु अच्छी तरह है और शीघ्र ही वापस आयेगा।' इसके बाद शीघ्र ही मैं घर लौट आया था।

(घ) मेरे बड़े भाई का विवाह होना था और दो दिनों से बिना रुके वर्षा हो रही थी और आकाश साफ होने के कोई लक्षण नहीं दिखाई दे रहे थे। फलतः स्थान की कमी के कारण वैवाहिक उत्सव झमेले में था। मेरी मां भगवान् जी के दर्शनार्थ गईं और उनसे अपनी कठिनाइयां बताईं। शीघ्र ही बाद में

उन्होंने खिड़की से बाहर झांक कर आकाश की ओर देखा और हवा में एक छड़ी इस प्रकार हिलाई, मानों बादलों को विभाजित कर रहे हों। इसके तुरन्त बाद ही बादलों का विशाल विस्तार वास्तव में दो भागों में टूट गया और अगले प्रातःकाल आकाश साफ था, जिससे हम लोग अपने अहाते में उत्सव सरलता से आयोजित कर सके।

१२— बहन जयकिशोरी पटवारी का, जो भगवान् जी की भक्त और पवित्रता की आदर्श हैं तथा महिला-समाज में कदाचित् उनकी सन्देशवाहिका होनेवाली हैं, भगवान् जी के साथ के अपने अनुभवों के सम्बन्ध में यह कथन है कि—

'पहले पहल भगवान् जी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने मैं वर्ष १९६४ में गई। जैसे ही मैं उनके समक्ष बैठी, उन्होंने मुझ पर एक स्नेहपूर्ण दष्टि डाली और मुस्कुराये। मैंने आनन्द की एक बाढ़ अनुभव की और मैं मुग्ध हो उठी। बाद में मैं नियमित रूप से प्रतिदिन उनके दर्शनों को जाती रही।

१९६७ के वर्ष में नगर कर्फ्यू के अन्तर्गत था और मैं अनेक दिनों तक दर्शनार्थ नहीं जा सकी। मैं बहुत उदास थी और मेरे अन्दर उनके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने की एक उत्कृष्ट अभिलाषा उत्पन्न हुई, जिससे मैं अशान्त हो उठी। एक विलक्षण बात हुई। कर्फ्यू एक घण्टे के लिये हटा दिया गया और मैं उनके निवास-स्थान को झपटी। मैंने उनको परमानन्द में पाया। उन्होंने मुझ पर एक दयापूर्ण दृष्टि डाली और मुस्कराए। मैं प्रसन्न होकर घर लौटी और निश्चिन्त हो गई।

१९६७ के जाड़ों में मैं हरिद्वार की तीर्थ-यात्रा से लौट रही थी कि ज़ोरों का हिम-पात होने लगा और हमारी बस बानिहाल के पास अटक गई। सड़क की सफाई में कई दिन लगनेवाले थे

और मैं गहरे संकट में थी। समझ में नहीं आता था कि क्या करूँ। अधिक-से-अधिक मैं भगवान् जी से उद्धार करने हेतु प्रार्थना कर सकती थी। केवल थोड़ी ही देर बाद बस को चलने का संकेत दिया गया। हम लोग चल पड़े और घर (श्रीनगर) सुरक्षित पहुंच गये। इस अवसर पर कोई दूसरी बस श्रीनगर अनेक दिनों तक नहीं आई। अगले दिन मैं भगवान् जी के दर्शनार्थ गई। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों वे मेरे आने की प्रतीक्षा ही कर रहे हों। अपनी चिलम से धूम्र-पान कर चुकने पर उन्होंने मेरी ओर देखा, मुस्कराए, अपने कंधों की ओर संकेत किया और कहा कि 'तुम्हारे सुरक्षित पहुंचने के लिये मुझे बस में कन्धा लगाना पड़ा।'

१३—श्री मोहनकिशन तिकू ने, जो भगवान् गोपीनाथ जी ट्रस्ट के एक सम्मान्य सदस्य और उसके संगठन-कर्ता हैं, भगवान् जी सम्बन्धी अपना निम्न अनुभव सूचित किया है—

"मैं एक व्यापारी हूँ और मेरी दुकान जहलम नदी के दक्षिणी तट पर प्रमुख गणपत यार, हब्बा कदल रोड, श्रीनगर पर सड़क के किनारे स्थित है। एक बार मास्टर जिन्दा कौल क़सबा, जो कश्मीर के एक प्रसिद्ध दार्शनिक कवि थे, मेरी दूकान पर बैठे थे और कुछ लोग भी थे। भगवान् गोपीनाथ जी ट्रस्ट के एक विशिष्ट सदस्य पण्डित शम्भूनाथ भान उस मार्ग से निकले और मास्टर जी को हमारी दुकान पर बैठे देखकर वे उनसे अभिवादन करने आ गये। मास्टर जी ने श्री भान जी से पूछा कि 'आप कहाँ जा रहे हैं ?' उन्होंने उत्तर दिया कि 'मुझे भगवान् जी के दर्शनार्थ जाना है।' मास्टर जी ने उनसे कहा कि 'भगवान् जी के प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा है, किन्तु उनका लगातार कम या अधिक चिलम से धूम्र-पान करना मुझे पसन्द

नहीं है।' श्री भान ने कोई उत्तर नहीं दिया और चुपचाप भगवान् जी के स्थान को चल दिये। कुछ मिनटों के बाद मैं भी उनके पीछे गया। जैसे ही हम लोग अभिवादन करके बैठे, भगवान् जी ने अपना सिर उठाया और कहा कि 'सड़क किनारे किसी दुकान में बैठकर मेरे चिलम धूम्र-पान पर कटाक्ष करने की किसी को क्या पड़ी है? मैं इसे एक विशेष उद्देश्य से कर रहा हूँ।' भगवान् जी परोक्ष-द्रष्टा तथा स्पष्ट-श्रोता थे। उनसे कोई बात छिपी नहीं रहती थी।"

१४—निम्न-लिखित घटना से अपने भक्तों के हित के प्रति भगवान् जी की तत्परता प्रकट होती है।

भगवान् जी के एक भक्त श्री माखनलाल तुतू का कथन है कि—

'२६ मई, १९६८ के तड़के प्रातःकाल मैंने भगवान् जी के दर्शन करने चाहे क्योंकि मुझे पता नहीं था कि वे पिछले दिन अपने नश्वर शरीर का त्याग कर चुके हैं। जैसे ही मुझे उनके महा-निर्वाण की बात ज्ञात हुई, मैं दुःख से अभिभूत हो उठा। मैं उनके निवास-स्थान की ओर चला और श्मशान-भूमि को जानेवाले जलूस में सम्मिलित हो गया। मैं एक व्यापारी हूँ और कश्मीरी शिल्प-वस्तुओं के विक्रय के लिये कश्मीर के बाहर जाया करता हूँ। लगभग एक मास पूर्व मैं दिल्ली से वापस लौटा था और श्रीनगर में किसी अच्छे व्यावसायिक केन्द्र में एक दुकान की खोज में था। बहुत प्रयास करने पर भी मैं असफल रहा। वास्तव में २६ मई को भगवान् जी के दर्शनार्थ जाने का मेरा विचार एक दूकान (किराये पर) की प्राप्ति में दैवी सहायता पाने के लिये हुआ था। जिस समय श्मशान में अन्तिम कृत्य हो रहे थे मैं विकट रूप से अपने को निराश और

असहाय अनुभव कर रहा था और सोच रहा था कि दैवी सहायता का मेरा एकमात्र सहारा भी चला गया। दुःख और चिन्ता से अभिभूत मैं श्मशान-भूमि की घास के सहारे लेटा हुआ था। एक प्रकार की भाव-समाधि में मैं आ गया, जब कि भगवान् जी मेरे समक्ष प्रकट हुये और मुझे अपने पीछे आने का निर्देश किया। वे मुझे श्रीनगर के सर्वाधिक व्यस्त व्यावसायिक केन्द्रों में से एक लैम्बर्ट लेन में ले गये, एक दूकान की शटर में लगे दो तालों को खोला और शटर को ऊपर उठाकर मुझे उसमें प्रवेश करने का सङ्केत किया। सचेत होकर, जो कुछ हुआ था, उसे सोचकर मैं स्तब्ध रह गया। मैंने भगवान् जी के मर्त्य अवशेष के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की और शव-दाह की प्रतीक्षा करने लगा। तीन या चार दिन बाद मैं लंम्बर्ट लेन में गया। वहां जब कि मैं एक दूकान में बैठा था, एक व्यक्ति ने आकर मुझे सूचित किया कि एक दूकान खाली है। मैं सीधा व्यावसायिक केन्द्र के व्यवस्थापक के पास पहुँचा। उसने मुझे उक्त दूकान की चाबियाँ सौप दीं, यद्यपि मुझसे पूर्व आनेवाले अनेक भावी किरायेदारों को वह अस्वीकार कर चुका था। भगवान् जी अति दयालु हैं यद्यपि वे भौतिक रूप से हम लोगों के साथ नहीं हैं, तथापि अपने भक्तों की, जब भी वे कठिनाई में होते हैं, सहायता करते हैं।

१५--श्री सोमनाथ काक, जो लायड्स बैंक, श्रीनगर में नियुक्त हैं और भगवान् जी के भक्त हैं, निम्न अनुभव वर्णन करते हैं--

(क) मेरा भाई श्री जवाहरलाल काक जब बम्बई के एक कालेज में इंजीनियरिंग का छात्र था, तब मूत्राशय के शूल (रीनल कोलेक) से पीड़ित हुआ। चिकित्सकों ने निदान किया

कि यह मूत्राशय में पथरी के कारण है और यह परामर्श दिया कि तुरन्त ही आपरेशन कराया जाय। जैसे ही मुझे उसका तार मिला, मैं सहायतार्थ भगवान् जी के पास पहुंचा। मैंने अपने भाई को बीमारी का वर्णन किया और वे बाईं ओर के अपने कटि-प्रदेश को मलने लगे और अपनी विशिष्ट शैली में कहा कि 'पत्थर हिम के साथ जल के साथ नीचे आते हैं और इधर देखो, पथरी मूत्र के साथ नीचे आ गई है।' मैंने संकेत समझ लिया किन्तु सहायता की अपनी प्रार्थना पुनः दुहराई। उन्होंने मुझे पुनः बताया कि 'पथरी नीचे आ गई है।' अगले प्रातःकाल मुझे अपने भाई का दूसरा तार इस सूचना का कि 'पुनः एक कठिन पीड़ा के बाद साफ़ा बांधे और ऊपर को इस प्रकार उठा हुआ फिरन पहने कि उसका एक किनारा उसके कन्धे पर टिका था, कोई व्यक्ति पथरी को खींच रहा था। कुछ मिनटों बाद मैंने मूत्र-त्याग किया और एक गूँज के साथ पथरी बाहर आई और मैंने शान्ति का अनुभव किया।' मेरा भाई तब भगवान् जी को नहीं जानता था। बाद में उसके मूत्राशय में पुनः एक पथरी विकसित हो गई। इस घटना का वर्णन अगले अनुच्छेद में दिया गया है।

३ अप्रैल, १९६७ को मुझे बम्बई से अपने भाई का टेलीफ़ोन मिला कि ५ अप्रैल, १९६७ को मूत्राशय की पथरी निकालने के लिये उसका आपरेशन होनेवाला है। जैसे हो मुझे यह सूचना मिली, मैं भगवान् जी के दर्शनार्थ लगभग ६ बजे सायंकाल गया। वहाँ मैंने अनेक व्यक्तियों को एकत्र पाया। अतः ११ बजे रात्रि तक मैं उनसे बात करने का समय नहीं पा सका। जब अन्य सभी व्यक्ति चले गये, तब मैंने उन्हें अपना सङ्कट सूचित करते हुये बताया कि 'मेरे लिये ४ तारीख अर्थात्

अगले दिन बम्बई पहुँचना सम्भव नहीं है। जिससे मैं ५ तारीख के प्रातः अपने भाई के आपरेशन में उपस्थित हो सकूं। उन्होंने दृढ़ता से कहा कि 'वायुयान से जाओ।' जब मैंने कहा कि 'पहले से टिकट लिये बिना ४ तारीख को स्थान पाना सम्भव नहीं है,' तब उन्होंने पुनः दुहराया कि 'कल वायुयान से जाओ।' चामत्कारिक ढंग से और उनकी कृपा से मुझे श्रीनगर से सीधे बम्बई के वायुयान में स्थान मिल गया और मैं वहां ४ तारीख के सायंकाल पहुंच गया। ५ तारीख के प्रातःकाल रोगी का आपरेशन सफलतापूर्वक सम्पन्न हो गया। आपरेशन-कक्ष से बाहर लाये जाने के शीघ्र बाद ही वह पुनः होश में आया। पहली बात जो उसने पूछी, वह यह थी कि 'भगवान् जी कहाँ गये ? जब मैं आपरेशन-कक्ष में ले जाया गया, तब साफा बांधे और अपनी फिरन का एक छोर अपने कन्धे पर डाले वे मेरे साथ थे।' उन्होंने (भगवान् जी ने) उससे यह भी कहा था कि 'अपनी मां को (श्रीनगर) यह तार दे दो कि सवा दो सेर आटे की पूरियाँ तैयार कर मेरे निवास-स्थान चन्दपुरा, श्रीनगर को भेज दें।' तार मिलने पर ऐसा ही किया गया और पूरियाँ भगवान् जी के स्थान पर ले जाई गईं। वे मुस्कराये और उन्हें वहाँ उपस्थित सभी लोगों में वितरित कर दिया।

(ख) १६६० के वर्ष में मुझे अपने परिवार के सदस्यों के साथ हरिद्वार तीर्थ-यात्रा में जाना पड़ा। श्रीनगर छोड़ने के पूर्व मैं भगवान् जी की अनुमति लेने गया। उन्होंने अनुमति दे दी और मुझे भस्म की एक छोटी पुड़िया दी और सलाह दी कि 'इसे अपने साथ रखना।' यह एक असाधारण बात थी क्योंकि वे माँगने पर ही भस्म देते थे। श्रीनगर से हरद्वार जाने के पूर्व कुछ दिन दिल्ली में व्यतीत करने हेतु हम लोग सीधे वहाँ गये।

दिल्ली में हमारे आतिथेय श्री लक्ष्मीनाथ ज़ालपुरी के पास निवास हेतु केवल एक ही कमरा था। अतः हमें उसी में निर्वाह करना पड़ा और हमने चाहा कि तुरन्त ही वहाँ से चल दें। तथापि हमें वहाँ तीन दिन ठहरना पड़ा। जब कि हम हरद्वार के लिये प्रस्थान करनेवाले थे, हमारे आतिथेय की पुत्री (६ वर्ष) अचानक गम्भीर रूप से बीमार हो गई और उसकी चेतना भी जाती रही। चिकित्सकों ने निवेदन किया कि यह मस्तिष्क की झिल्ली के प्रवाह (मेनिन्जाइटिस) रोग का मामला है। तीन दिन के बाद उसकी दशा और भी बिगड़ गई और चिकित्सकों ने उसके जीवन की आशा छोड़ दी। हम लोग इस स्थिति में बहुत ही क्षुब्ध हुये कि हमारी उपस्थिति में हमारे आतिथेय के परिवार के एक सदस्य पर मृत्यु मंडरा रही है। मैं सारी रात भगवान् जी से बच्ची की प्राण-रक्षा में सहायता करने की प्रार्थना करते हुये जागता रहा। तड़के प्रातःकाल मेरे मन में एक विचार चमका कि उनके द्वारा मुझको दिया गया भस्म इस लड़की को अच्छा करने के ही लिए है। मैं सीधा दौड़ा हुआ उसकी मां के पास गया और उनसे रुग्णा का चेहरा धोने को कहा। उसकी मां ने मेरे अनुरोध को यह कहते हुये अस्वीकार किया कि बच्ची मर रही है और उसके अंगों में प्राण नहीं है।' तथापि मेरे हठ करने पर वे सहमत हो गईं। मैंने भस्म का कुछ अंश निकाला और उसे चाय के एक चम्मच में पानी में घोलकर उसके मुख में डाला। भस्म वहीं बना रहा क्योंकि वह उसे निगल नहीं सकी और उसका कुछ भाग बाहर भी निकल आया। कुछ मिनटों के बाद मैंने जब पुनः प्रयास किया, तो भस्म-मिश्रित पानी उसके गले के नीचे उतारने में मुझे सफलता मिल गई। लगभग १५ मिनट बाद वह अपने

हाथ-पैर हिलाने लगी और मन्द घुटी हुई आवाज निकालने लगी। लगभग आधे घण्टे बाद वह होश में आ गई और अपनी आंखें खोल दीं। एक घण्टे बाद वह अपने बिछौने पर उठ बैठी। सायंकाल वह अपनी सहेलियों से हिली-मिली और खेलने लगी।

१६—एक दिन, जब अनेक व्यक्ति भगवान् जी के समक्ष बैठे हुये थे, वे चिल्ला उठे कि 'भूकम्प आयेगा और बड़ा विनाश करेगा।' उपस्थित लोग इस भय से आतंकित हो उठे कि कश्मीर भूकम्प से आक्रान्त हो सकता है, जो कोई असामान्य बात नहीं थी क्योंकि यह भूकम्प-पट्टी के अन्तर्गत पड़ता है। अगले ही दिन ईरान भयानक भूकम्प से क्षति-ग्रस्त हुआ, जिसमें धन-जन की अपार हानि हुई।

१७—गणेश स्थापन, श्रीनगर में नियुक्त एक वृद्ध व्यक्ति पण्डित विश्वनाथ पुरोहित द्वारा सूचित एक घटना निम्न प्रकार है—

१९६० या उसके पास के वर्ष में, दीवाली बाद के एक दिन मैं भगवान् जी के निवास-स्थान पर लगभग ३ बजे सायंकाल गया था। उस दिन वहाँ अन्य अनेक व्यक्ति भी उपस्थित थे। उनमें से एक नवयुवक ने भगवान् जी के सामने पड़ी चरस का एक पिण्ड, जब कि वे अपनी चिलम पीने में व्यस्त थे, उठा लिया और उसे अपनी फिरन की जेब में रख लिया। धूम्र-पान समाप्त कर चुकने पर भगवान् जी ने उस नवयुवक को सम्बोधित किया और उससे कहा कि 'उसे रूमाल में रख लो।' इससे अनुमानतः उस युवक को यह सूचित करना था कि उसकी चोरी अनदेखी नहीं रही। तथापि उसने अनुभव किया कि जिस जेब में उसने चरस रखी थी, वह भारी हो गई है। उसने उसके

भीतर कुछ हिलना-डुलना भी अनुभव किया। जब उसने अपना हाथ उस जेब में डाला तो चौंकते हुये वह चिल्ला पड़ा 'सांप, सांप मैं मरा, मैं मरा, मुझे बचाओ!' आदि। लगभग ३ फुट लम्बा काला सांप उसकी जेब से बाहर निकला और कमरे में उपस्थित सभी लोग भगवान् जी की बहिन के सहित भाग खड़े हुये। उन्होंने मुस्कराते हुये कहा कि 'कोई ख़तरा नहीं है, वापस आ जाओ।' उस नवयुवक की जेब से जैसे ही सांप बाहर निकला, वह रेंगा, जाकर भगवान् जी की गोद में बैठ गया, थोड़ी देर वहीं रहा और भगवान जी ने अपने दाहिने हाथ से उसकी पीठ पर थपकी दी और उससे कहा कि 'जाओ।' वह हिला और रेंग कर उनके आसन की गद्देदार परतों में से एक में घुस गया और फिर कभी नहीं दिखाई दिया। स्पष्ट ही यह एक भर्त्सना थी।

यदि कोई उनके सामने पड़े धन को चुराता था, तो वे उस पर ध्यान देते प्रतीत नहीं होते थे। एक बार एक छोटे बालक ने उनकी कपड़े की थैली, जिसमें धन था, चुरा लिया, किन्तु अगले दिन वह उसे वापस ले आया।

१८—१९४७ के वर्ष में, जब पाकिसातनी आक्रामकों ने कश्मीर पर आक्रमण किया, एक कश्मीरी हिन्दू सिन्ध घाटी में नियुक्त था, जहाँ आक्रामक घुस गए थे। वह श्रीनगर वापस आने में असफल रहा। इससे उसकी पत्नी उद्विग्न हुई और तड़के प्रातःकाल भगवान् जी के पास अपने पति की सुरक्षा और श्रीनगर को सुरक्षित वापसी हेतु पहुँची। घुमा-फिरा कर उन्होंने संकेत किया कि उसके पति के लिए ख़तरा है। वह समझ गई कि वे उसे क्या बता रहे हैं और अपने हृदय में यह प्रार्थना करती हुई बैठी रही कि उसका पति सुरक्षित घर वापस

ग्रा जाय। लगभग २ बजे दिन में उन्होंने उससे यह बताते हुए जाने के लिए कहा कि 'तुम्हारा पति वापस आ जायगा।' ग्राक्रामकों को झाँसा-पट्टी देते हुए उसका पति उसी सायं-काल श्रीनगर के लगभग १८ मील दूर वायिल नामक स्थान पर पहुँचा जहाँ उसने यात्रियों से भरी एक बस देखी। उसने चालक से प्रार्थना की कि उसे भी साथ ले चला जाय ग्रौर उसे बस की छत पर बैठा लिया गया। श्रीनगर पहुँचने पर बस ग्रचानक जामा मस्जिद के पास रुक गई। वह सन्तुलन खो बैठा और लुढ़क कर नीचे ग्रा गिरा। उसने ग्रनुभव किया कि गिरते समय किसी ने उसे ग्रपनी बाहों में ले लिया ग्रौर निश्चित मृत्यु से उसे बचा लिया। जिन्होंने उसे गिरते देखा, वे उसकी ग्रोर दौड़े ग्रौर उसे सड़क पर एक दूकान में ले ग्राए। पीने के लिए कुछ पानी पाने के बाद वह सामान्य स्थिति में ग्रा गया ग्रौर चलकर घर पहुँच गया। कश्मीरी में एक लोकोक्ति है कि सन्तों की मध्यस्थता से 'कथीस छा कथ गछन' ग्रर्थात् शिला पर गिरकर मरने का जिसका प्रारब्ध है वह उसके स्थान पर मात्र एक खरोंचा पाकर बच जाता है।

१६--एक व्यापारी पण्डित महेश्वरनाथ क़सवा कर्मकाण्ड में दृढ़-निष्ठ तथा वेदान्तिक साहित्य के विद्वान् हैं। उन्होंने ग्रनेक सन्तों के दर्शन ग्रौर उनकी सेवा की है, किन्तु ग्रपना व्यक्तित्व बनाए रखा है। सभी प्यालों को चखा है, रिक्त किसी को नहीं किया। १६५७-६७ की अवधि में वे जब-तब भगवान् जी के स्थान पर ग्राते रहे। उनके द्वारा वर्णित ग्रनुभवों में से एक नीचे दिया गया है—

'१६६६ के वर्ष में एक बार मैं चन्दपुरा, श्रीनगर में भगवान् जी के स्थान पर ग्रपराह्न में देर में गया था। जब कि मैं उनकी

भव्य उपस्थिति में बैठा था, मेरे मन में यह विचार आया कि मैं हारी पर्वत देव-स्थान की सायं आरती से वंचित रह जाऊँगा और इससे मैं बड़ा अशान्त हो उठा। गोधूलि के समय उनके सम्मुख बैठा हुआ मैं चकित हो गया, जब न केवल आरती का एक पूर्ण चित्र अर्थात् बृहद् सिन्दूरी रंग की शिला, जिस पर शारिका भगवती का प्रतिनिधित्व करता हुआ श्रीचक्र उत्कीर्ण माना जाता है, इस अवसर पर पुजारी द्वारा सदा की भाँति जलाए हुए दीपक और भगवान् जी के पीछे की दीवार पर चकाचौंध करनेवाला एक प्रकाश मुझे दिखाई पड़ा, अपितु वहाँ सदा की भाँति गाई जानेवाली आरती भी मैं सुन सकता था। यह एक ऐसा दृश्य था जो पहले मैंने कभी नहीं देखा था। मुझे और भी चकित करनेवाली बात थी मेरे मन के अन्तः-पटलों में छिपी बातों पर भगवान् जी की अन्तर्दृष्टि और उनके द्वारा न केवल आरती का एक दृश्य-चित्र लाकर अपितु उसे मेरे लिये श्रव्य भी बनाकर मेरी इच्छा की पूर्ति किया जाना। मुझे यह प्रतीत हुआ कि जिस कमरे में भगवान् जी बैठे थे, उसकी दीवारें आरती का गान कर रही हैं। कैसी अलौकिक शक्ति भगवान् जी में थी !

२०—एक डिवीज़नल फ़ारेस्ट अधिकारी श्री ए० एन० फ़ोतेदार एक तुच्छ आरोप पर और उनका कोई अपना दोष न होते हुये भी १९५८ के वर्ष में निलम्बित कर दिये गये। अपने निलम्बन की अवधि में वे एक मित्र के घर जा रहे थे कि मार्ग में कश्मीर के परोक्ष-दर्शी रहस्यपूर्ण सन्त स्वामी नन्दलाल जी से, जिनका उल्लेख पहले भी किया जा चुका है, उनकी भेंट हो गई। स्वामी जी ने, जिनके विषय में श्री फ़ोतेदार को कुछ जानकारी थी किन्तु पहले उनसे मिले नहीं थे, उन्हें अपने साथ

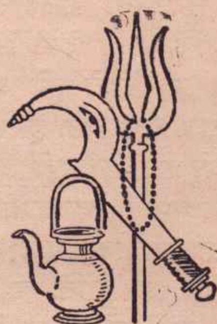
एक कश्मीरी हिन्दू के मकान को, जहाँ स्वामी जी लोगों के एक समूह के साथ जा रहे थे, चलने का निर्देश किया। स्वामी जी का यह स्वभाव था कि जो कोई उनके पास आता, उसको तिलक लगाते और परवाना (कागज की लिखित पर्ची) देते। उन्होंने उर्दू लिपि में एक परवाना लिखा और उसे श्री फ़ोतेदार को दिया। इस परवाने में, जो अब भी श्री फ़ोतेदार के अधिकार में है, यह लिखा था कि उन्हें शहिंशाह गोपीनाथ जी से, जो ७ पदकों से विभूषित हैं और चन्दपुर, श्रीनगर में रहते हैं, अपील करनी चाहिये। यह उस स्थान का सन्दर्भ था जहाँ उस समय भगवान् जी निवास करते थे। उन्होंने यह भी बताया कि हारी पर्वत देव-स्थान (श्रीनगर) में उन्हें एक व्यक्ति मिलेगा, जो उन्हें भगवान् जी के निवास-स्थान का मार्ग दिखाएगा। श्री फ़ोतेदार (श्री हारी पर्वत पर) श्री शारिका भगवती की पहाड़ी की दैनिक परिक्रमा किया करते थे। दो या तीन दिनों बाद, जब कि वे परिक्रमा में घूम रहे थे, उन्हें उनका एक अधीनस्थ कर्मचारी मिला, जिसने उनसे भगवान् जी के पास जाने और उनकी सहायता पाने का अनुरोध किया। उसने आन्तरिकतापूर्वक आग्रह किया और भगवान् जी के स्थान पर उन्हें स्वयं ले चलने का प्रस्ताव किया। कुछ दिनों बाद श्री फ़ोतेदार इस व्यक्ति के साथ भगवान् जी के दर्शनार्थ गये और फिर बाद के अवसरों पर भी जाते रहे।

एक बार जब श्री फ़ोतेदार भगवान् जी के समक्ष बैठे हुये थे, वे अपने मन में ज्योतिष के पक्ष-विपक्ष में तर्क करने लगे। यद्यपि उन्होंने इस विचार को अपने मन से निकालने का प्रयास किया, किन्तु वे सफल नहीं हुये और व्याकुल हो उठे तथा क्षोभ का अनुभव किया। इसी बीच एक व्यक्ति आया और भगवान्

जो के सामने बैठ गया। धूम्र-पान कर चुकने के बाद भगवान् जी ने अपनी चिलम इस व्यक्ति को दी, जिसने कुछ कश खींचने के बाद चिलम उन्हें वापस कर दी। शीघ्र ही बाद में यह सज्जन एक जन्म-कुण्डली के विभिन्न स्थानों के ग्रहों का प्रभाव बताने लगे। श्री फ़ोतेदार, जो एक विवेकी और तार्किक मस्तिष्कवान् हैं, जन्म-कुण्डलियों में विश्वास नहीं करते थे और पहले तो उन्हें यह आभास नहीं हुआ कि उक्त व्यक्ति उन्हीं (श्री फ़ोतेदार) की जन्म-कुण्डली के ग्रहों की दशा का वर्णन कर रहा है, किन्तु किसी प्रकार वे उत्सुक हो उठे और ध्यान से उसकी बातें सुनने लगे। श्री फ़ोतेदार ने उससे पूछा कि 'आपने मेरी जन्म-कुण्डली कहाँ देखी ?' इस प्रश्न का उसने उत्तर नहीं दिया किन्तु यह कहते हुये अपना कथन समाप्त किया कि 'जन्म-कुण्डलियाँ सत्य होती हैं किन्तु उन्हें पढ़नेवाला साधक होना चाहिये, जो बातों का सही तात्पर्य निकाल सके।' भगवान् जी ने पुनः उसे अपनी चिलम दी। उस व्यक्ति ने कुछ कश लिये और उसे उन्हें वापस कर मौन हो गया। अब ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों यह वह व्यक्ति नहीं था, जिसने जन्म-कुण्डली की सत्यता या उसके पढ़ने के विषय में कुछ कहा था।

श्री फ़ोतेदार भगवान् जी के दर्शनार्थ प्रायः जाया करते थे किन्तु उन्होंने अपनी पुनर्नियुक्ति का विषय उनके सामने नहीं रखा। एक बार भगवान् जी ने स्वयं ही इस विषय को उठाया और उन्हें बताया कि 'लगभग उस समय जब जम्मू में बसन्त ऋतु होगी, तुम वहाँ जाओगे और पुनर्नियुक्त होगे, यद्यपि कुछ प्रतिकूल बातें रहेंगी और कुछ वेतन-हानि होगी।' उन्होंने यह भी कहा कि 'यद्यपि तुम प्रतिकार हेतु न्यायालय की शरण

लोगे, किन्तु मामला तब तक स्थगित रहेगा, जब तक बख्शी गुलाम मुहम्मद की सरकार चली नहीं जाती और सादिक सरकार उसका स्थान ले नहीं लेती, जो तुम्हारे सभी उपालम्भों का प्रतिकार करेगी।' वस्तुतः ऐसा ही घटित हुआ। श्री फ़ोतेदार भारतीय वन-सेवा में हैं और वर्तमान में वनों के संरक्षक (कंजर्वेटर आफ़ फ़ारेस्ट्स) के रूप में कार्य कर रहे हैं।



अध्याय—१४

भगवान् जी का दर्शन

एक सन्त सकोरी बाबा ने ठीक ही कहा है कि 'सन्तों का कार्य आत्माओं की रक्षा करना या जन्म-मरण के चक्र को समाप्त कर जिस स्रोत से वे आविर्भूत होती हैं उसी में उन्हें लीन करना है। वे मार्ग दिखाते हैं किन्तु कभी किसी को बाध्य नहीं करते। सन्तों की मुख्य क्रिया अन्तराकाश या आध्यात्मिक स्तर पर होती है, जिसे बुद्धि के लिये समझना या हृदयंगम करना असम्भव है।'

राजयोगी श्री अरविन्द घोष ने भी कहा है कि 'लोगों को दृश्यमान सन्तों की बाह्य क्रियाओं में सन्तों का जीवन नहीं होता।'

भगवान् गोपीनाथ जी, जिनके दर्शन की व्याख्या मैं पूर्ण विनम्रतापूर्वक करने का प्रयास कर रहा हूं, एक अन्तर्मुखी व्यक्ति थे। वे बहुत ही कम बोलते थे और सदैव परमात्मा के ध्यान में मग्न रहते थे। जब उनका ध्यान आकृष्ट किया जाता, तब वे इस स्तर पर आ जाते, प्रश्न-कर्ता से कुछ शब्द कहते और उसके बाद पुनः ध्यान-मग्न हो जाते। जब वे आकाश में दृष्टि स्थिर किये अपनी चिलम से धूम्र-पान करते होते, उनके शरीर से संवेग निकलते होते और उन्हें ग्रहण भी करते होते, जिसे सूक्ष्म-दर्शी व्यक्ति देख सकता था, उस समय कोई भी विघ्न डालने का साहस नहीं करता था। अतः अहं-शून्य दशा

में वास्तविक आत्म-तत्व की उनकी अनुभूति की गहराई को कोई नहीं जानता। ऐसी दशा में आवश्यकतानुसार मुझे उनके उन अस्पष्ट रहस्यपूर्ण उद्गारों को समझने के लिये, जिनका उच्चारण विभिन्न अवसरों पर उन्होंने मेरी उपस्थिति में या अन्य लोगों के सामने किया, स्वयं उन्हीं की अपनी परिस्थिति के प्रति प्रतिक्रिया पर निर्भर होना पड़ा है जिससे मैं उनके दर्शन का एक मानसिक चित्र खींच सकूं और तब उसकी व्याख्या करने का प्रयास कर सकूं।

भगवान् जी के अपने हस्त-लेख में लिखित टिप्पणियों के अवलोकन और उनकी बालावस्था से उनसे सम्बन्धित कुछ व्यक्तियों से परामर्श करने के बाद तर्क-संगत रूप से यह निश्चित है कि वे उस प्राचीन सनातन पंचांग उपासना का अभ्यास कर रहे थे जिसमें महा-गणेश, देवी माता, भगवान् नारायण और भगवान् शिव तथा सूर्य की पूजा की जाती है। कश्मीर में स्मरणातीत काल से शिव-शक्ति-उपासना होती आ रही है। अतः सहज अंकनीय आयु में उनके मन का शक्ति-उपासना के प्रति आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था। अतएव उनकी पहली इष्ट उचित ही श्रीशारिका भगवती थी, जिनका मन्दिर हारि पर्वत, श्रीनगर में स्थित है। कहा जाता है कि २७ की आयु होने के पूर्व ही उन्हें देवी माता का साक्षात्कार हो गया था। यह उनके यशस्वी पूर्व-वर्ती सन्तों और रहस्य-वेत्ताओं के समान ही आध्यात्मिकता के उच्चतर विषयों के अनुसन्धान के लिये आगे बढ़ने का उनका पहला कदम था।

भगवान् जी के अपने हस्त-लेख में हम शारदा-लिपि में (जो कश्मीर में प्रचलित है और देव-नागरी से कुछ भिन्न है)

I Page 60 II

भगवान् श्री गोपीनाथ जी के हाथ के लिखे राम और शिव-नाम से युक्त दो प्रणव

दो ॐकार प्रतीक पाते हैं, जो लगभग १६२५ ई० के आस-पास लिखे हैं, जब कि वे लगभग २६ वर्ष की आयु के थे। इनकी प्रतिलिपियां अगले पृष्ठ पर प्रस्तुत हैं।

ॐकार सं० १ 'राम राम राम राम' शब्दों से आवृत है और ॐकार के भीतर का शून्य स्थान भी, ॐकार की दुहरी रेखाओं के बीच के शून्य को छोड़कर, जो रिक्त है, 'राम राम' से भरा है। इससे राम ॐकार के एक अंश-रूप में व्यञ्जित होता है।

ॐकार सं० २ में दुहरी रेखाओं के बीच के शून्य को छोड़-कर, जो रिक्त है, 'शिव शिव' लिखा है।

दोनों ॐकार-चित्रों की दुहरी रेखाओं के बीच का रिक्त शून्य निराकार निर्विकार अविनाशी ब्रह्म का प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है, जिसके चारों ओर प्रत्येक वस्तु केन्द्री-भूत है।

ॐकार सं० २ के ऊपर निम्नलिखित मन्त्र अंकित है—

श्रीमत् परम ब्रह्म गुरुं वदामि
श्रीमत् परम ब्रह्म गुरुं भजामि
श्रीमत् परम ब्रह्म गुरुं स्मरामि
श्रीमत् परम ब्रह्म गुरुं नमामि
ॐ तत् सत् ॐ

ये दो ॐकार स्पष्टतः ब्रह्म-प्राप्ति के दो मार्गों की ओर इंगित करते हैं। एक राम (अर्थात् विष्णु या नारायण) की भक्ति द्वारा और दूसरा शिव की भक्ति द्वारा। ॐकार सं० २ के ऊपर अंकित मन्त्र से यह संकेत है कि गुरु परब्रह्म है।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने कहा है कि नारायण की

शरण लिए बिना मैं नष्ट सा प्रतीत होता था। भगवान् जी भी 'नारायण'-शब्द का उच्चारण करते थे। एक बार उन्होंने मुझे बताया था कि नारायण की माया सर्वोच्च है। अपनी धूनी (पवित्र अग्नि) की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा कि 'यह नारायण का पाद (पैर या प्रतीक) है। क्या नारायण तुम्हारे हृदय में नहीं है ? नारायण बनो।'

कुछ वर्षों बाद मैं नारायण के साकार-रूप का ध्यान कर रहा था कि भगवान् जी ने मुझे अपने चिमटे से मारा। आश्चर्य कि इसके फल-स्वरूप मैं निर्गुण अवस्था के नारायण की उपासना में आ गया। विष्णु के उपासक परम सत्ता ईश्वर या ब्रह्म को नारायण मानते हैं, जो ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र त्रिदेवों के परे है। भगवान् शंकराचार्य, जो विष्णु-पूजा के भक्त कहे जाते हैं, उन्हें निर्गुण ब्रह्म का सगुण स्वरूप मानते हैं। इस सम्बन्ध में शंकर का दृष्टिकोण इस सतत अनुभूति से युक्त था कि वह ब्रह्म माया-शक्ति से सम्बन्धित होते हुए भी उस पर पूर्ण नियन्त्रणवान् है। जब उच्चतर आत्म-ज्ञान द्वारा परम पुरुष को पहचाना जाता है, तब वह यही निर्गुण ब्रह्म है और जब उसे भावना द्वारा अनुभव किया जाता है, तब वह विष्णु या सगुण ब्रह्म है।

भगवान् जी एक शुष्क तर्कवान् व्यक्ति न थे। वे प्रायः परमानन्दावस्था में दिखाई देते थे, तथापि वे किसी बाह्य भावुकता को प्रकट नहीं करते थे। भावुकता के अश्रु बहाते या दीनता प्रकट करते पिछले ६० वर्षों के जीवन में वे कभी दिखाई नहीं दिए जो कि भक्ति-मार्ग के उपासकों की विशेषता है। एक बार मैंने उनसे प्रश्न किया कि 'जो संवेग आप चिलम

के धूम्र-पान द्वारा या अपने शरीर के विभिन्न अंगों से निकालते हैं, उनमें क्या अजुज़ या इन्किसारी (विनम्रता और प्रार्थना) हो सकती है?' उन्होंने उत्तर दिया कि 'यह सम्भव है।' किन्तु उन्होंने अपने इस उत्तर को स्पष्ट नहीं किया। अतः यह स्पष्ट है कि वे नारायण को सगुण ब्रह्म मानते थे, किन्तु यह निष्कर्ष तब जटिल हो उठता है जब हम निम्न विवरण के सन्दर्भ में उस पर विचार करते हैं—

भगवान जी प्रायः शिव का भी नामोच्चारण किया करते थे। अपने पार्थिव शरीर का त्याग करने और असीम में लय होने के पूर्व उन्होंने "ॐ नमः शिवाय" का उच्चारण किया था। वर्ष १९४६ में वे श्री अमरनाथ जी की तीर्थयात्रा पर गए थे। पवित्र गुफा के भीतर और उसके बाहर भी अंग-विक्षेप करते हुए उन्होंने कहा था कि "शिव सर्वत्र नृत्य कर रहे हैं" और वे स्वयं सारे दिन परमानन्द की दशा में रहे।

मेरे विचार से भगवान् जी का दर्शन बहुत कुछ कश्मीर के अद्वैत शैव-मत के त्रिक सिद्धान्त के समान है, जिसमें ज्ञान, इच्छा और क्रिया की प्रधानता है। यह सिद्धान्त आत्मा को और वास्तविक मनन द्वारा पूर्णता की स्थिति में उसकी वापसी को स्वीकार करता है। यह दर्शन मनुष्य, सृष्टि और ३६ तत्वों के त्रिक सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व और समन्वय करता है। इस दर्शन का मुख्य उद्देश्य उन्नत भौतिकता के द्वारा विश्व के साथ व्यक्तिगत आत्मा के ऐक्य और विचारोद्घाटन के लिए साधना के नियमित क्रम से उपलब्ध अनुभूतियों और वास्तविकता के स्वरूप का अन्वेषण करना है। यद्यपि वेदान्त और शैव दर्शनों के अनेक सिद्धान्त समान हैं, शक्ति इस मत की विशेष विवृति

है। इसका विश्वास है कि विश्व की सृष्टि, स्थिति और लय केवल शिव में होती है। वेदान्त में यह केवल माया है, जो इस बाह्य सृष्टि के लिए उत्तरदायी है और सारा जगत् मिथ्या है। इस मत के अनुसार आत्मा की स्वीकृति और उसका नितान्त पूर्णता की अपनी मूल आदिम अवस्था को पुनः प्राप्त करना, जहाँ हम कुछ भी नहीं चाहते या किसी बात की कमी नहीं होती, मोक्ष की स्थिति है। उनका तर्क है कि पुरुष (सीमित स्वरूप में शिव) भौतिक शरीर के सम्पर्क के कारण आणव, मायिक और कार्मण—इन तीन मलों को ग्रहण करता है, जो आत्मा के सत्य स्वरूप को प्रच्छन्न कर एक ओर आत्मा तथा वातावरण के बीच और दूसरी ओर सत् तथा असत् के बीच भेद-भाव उत्पन्न करते हैं और ये ही उत्तम या निकृष्ट जन्म के लिए उत्तरदायी हैं। शिव की परमेच्छा का स्वभाव ही यह है कि वह स्वयं अपने से अपने वास्तविक स्वरूप को छिपाता है और अपने को एक जीव के रूप में और तब पुनः अपने सत् स्वरूप से ऐक्य प्रकट करता है। उनका कथन है कि शिव द्वारा सृजित कोई वस्तु असत् नहीं हो सकती। अतः यह आश्चर्य-जनक संसार असत् नहीं है। सार्वभौमिक चेतना के स्तर तक व्यक्तिगत जागृति की अनुभूति को ही त्रिक माना गया है और विश्वास किया जाता है कि यह मनुष्य को साम्यावस्था के मार्ग पर ले जाता है। यह दर्शन आत्म-स्वीकार, कर्म और भक्ति में विश्वास रखता है। भगवान् जो के अनेक वर्षों के क्रिया-कलापों का मनन करने से ऐसा ही प्रमाणित होता है।

जब कभी भगवान् जो कोई कार्य करने को उद्यत हुए, उन्होंने कभी 'मैं' शब्द का प्रयोग नहीं किया, अपितु 'हम' का

ही प्रयोग किया। उदाहरण के लिए यदि भोजन परोसा जाता था और अकेले उन्हीं को खाना होता था, तो वे कहते कि 'हम खाएंगे' या जब उन्हें कोई भी काम अकेले ही करना होता, तो वे यही कहते कि हम यह या वह काम करेंगे। इससे 'मैं' के स्तर (इदन्ता) से अहं-शून्य अहन्ता तत्व के स्तर तक विकसित होने के मार्ग का स्पष्ट संकेत मिलता है। यह सदा-शिव-अवस्था शिव का अव्यक्त ॐकार रूप मानी जाती है।

यह कहा जाता है कि योगी लोग शिव का दर्शन आत्मा में करते हैं, प्रतिमाओं (मूर्तियों) में नहीं।

हम यह नहीं बता सकते कि हिन्दू-धर्म के भक्ति-पक्ष को परिव्याप्त करनेवाले दो मतों—नारायण-मत या शिव-मत—में से किस मत की प्रधानता उनके मन में थी अथवा इन दोनों मतों का संश्लेषण उनका अभीष्ट था, जैसा कि कहा गया है—

शिवाय विष्णु-रूपाय
शिव-रूपाय विष्णवे
शिवस्य हृदयं विष्णुः
विष्णोश्च हृदयं शिवः

अर्थात् शिव और विष्णु दोनों एक हैं तथा समान हैं।

शंकराचार्य के अनुसार जब तक कोई अपने को एक अलग और अमर अस्तित्व मानता है, तब तक एक बाह्य अस्तित्व के रूप में एक परमेश्वर भी रहता है और बाह्य विश्व भी। किन्तु जब कोई अपने व्यक्तित्व को विलुप्त कर ब्रह्म की अविच्छिन्न अनुभूति में मस्त हो जाता है तब ईश्वर और विश्व भी विलीन होकर एक निर्गुण ब्रह्म में लय हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में कथित और नीचे उद्धृत रूपक बहुत रोचक है क्योंकि यह स्पष्ट है—

'आर्कटिक शीत ऋतु में अविद्या के उत्तरीय तेज की

चमत्कारपूर्ण नोचे न आनेवालो ज्योति में निर्गुण ब्रह्म के ध्रुवीय सागर में तैरते हुए विराट् हिम-शैल रूप ईश्वर को परिवेष्टित किए मृदु हिम-खण्ड के अनेक अंश जोव हैं, किन्तु जिस क्षण आर्कटिक ग्रीष्मारम्भ होता है और ज्ञान-सूर्य क्षितिज में उदय होता है, मृदु हिम-खण्ड के असंख्य अंश और विराट् हिम-शैल पिघल कर आर्कटिक सागर में, जिससे वे उद्भूत हुए थे, विलीन हो जाते हैं। इसी प्रकार जोव और ईश्वर भो, जो वस्तुतः ब्रह्म के ही प्रक्षिप्त स्वरूप हैं, तभी तक वास्तविक हैं, जब तक कि विभेदात्मक चेतना विद्यमान है, किन्तु जब सार्वभौमिक चेतना उदित होती है, ईश्वर, जीव और बहुरूपात्मक सृष्टि पिघल कर अद्वैत निर्गुण ब्रह्म की निर्विवाद चेतना में लय हो जाती है।'

कश्मीर के एक विद्वान् ब्राह्मण ने, जो प्रणव (ॐकार) उपासना के अग्रिम स्तर में थे, एक बार अपनो उपासना के कुछ पक्षों को स्पष्ट करने के लिए भगवान् जी से कुछ प्रश्न किए। भगवान् जी ने उच्च स्वर में उत्तर दिया कि 'ॐकार परमेश्वर-शीर्ष का कण्ठ है, उसके बिना कुछ भी सम्भव नहीं।'

भगवान् जी ने एक बार मुझसे कहा कि 'क्या तुम यह समझते हो कि इस प्रकार की साकार उपासना तुम्हें आत्म-ज्ञान प्राप्त करने में सहायता करेगी ?' उनका तात्पर्य था कि आत्मा का ज्ञान विचार द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, साकार उपासना द्वारा नहीं।

एक अन्य अवसर पर उन्होंने मुझसे कहा कि 'तुम ऐसे कर्मों से क्यों झिझकते हो, जिनके द्वारा आत्मा को जाना जा सकता है।'

एक बार एक भक्त को सम्बोधित करते हुए भगवान् जी ने कश्मीरी में कहा कि—

'अहंकारस नमस्कार
सुय गव ॐकार
तमी सत बनिय साक्षात्कार
अनदित करने पर इसका अर्थ है कि—
अहङ्कार को विदा करने का अर्थ है
ॐकार पर एकाग्र होना, जिसके द्वारा व्यक्ति
साक्षात्कार (आत्म-ज्ञान) प्राप्त करेगा।'

या

अहंकार का अर्थ यह अनुभूति है कि मैं विश्व या वास्तविक अहं हूं और उसे ॐकार साक्षात्कार (आत्म-ज्ञान) के प्रति अग्रसर करता है।

भगवान् जी के एक भक्त पण्डित गोपीनाथ दर, जो उनके सम्पर्क में दो दशकों से अधिक समय तक रहे, के द्वारा वर्णित एक घटना उन्हीं के शब्दों में नीचे उद्धृत है—

'मई, १९५७ को प्रातःकाल बनारस से एक आचार्य भगवान् जी के आध्यात्मिक विकास के स्तर को जानने के उद्देश्य से उनके दर्शनार्थ आए। उन्होंने भगवान् जी को मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और उनके सामने बैठ गए। मैं भी उपस्थित था। प्रारम्भ में इन संन्यासी आचार्य ने मुझसे पूछा कि 'भगवन् जी का नाम क्या है?' भगवान् जी का नाम जब मैंने उन्हें बताया, तब उन्होंने भगवान् जी के आध्यात्मिक विकाश का स्तर मुझसे जानना चाहा। मैं उलझन में पड़ गया और मैं स्पष्टतः अपने को उनकी इस जिज्ञासा का समाधान करने में पर्याप्त सक्षम नहीं पा रहा था। मेरी उलझन को देखकर भगवान् जी मुस्कराए और श्रीमद्-भगवद्गीता के अध्याय

१५ के निम्न श्लोक ३ का उच्चारण किया—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्-गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

आचार्य ने भाव-मग्न होकर ध्यान से उन्हें सुना, नत-मस्तक हुए और कहा कि 'मुझे उत्तर मिल गया ।' इसके बाद उन्होंने बहुत सन्तुष्ट और प्रसन्न होकर विदा ली ।'

उक्त श्लोक का अर्थ निम्न प्रकार है—

'सूर्य उसे प्रकाशित नहीं करता, न चन्द्रमा और न अग्नि । वही परम धाम मेरा है, जहाँ पहुँच कर कोई वापस नहीं आता ।'

कदाचित् जो परमावस्था स्वतःप्रकाश ब्रह्म-ज्योति से प्रदीप्त स्वधाम कही जाती है, वही यह है, जहाँ पहुँचकर व्यक्ति जन्म-मरण के चक्र में नहीं लौटता ।

यही अवस्था उपनिषदों में वर्णित है । यथा—

न तत्र सूर्यो भाति
न चन्द्र-तारकम्
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः
तमेव भान्तमनु भाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति

चित् की इसी परमावस्था को भगवान् जी ने प्राप्त कर लिया था ।

परम सन्त कबीर साहिब द्वारा योगेश्वर गोरखनाथ जी के साथ अपने सत्संग में इसी परमावस्था का वर्णन किया गया है । कबीर साहिब इस अवस्था आत्म-लोक को क्षर या अक्षर सभी

से परे मानते हैं और कहते हैं कि षट्-चक्रों या प्राणायाम पर अधिकार पाने से योगी सुमेर अर्थात् मस्तिष्क के सर्वोच्च स्थान ब्रह्मरन्ध्र में नहीं पहुँचेंगे, अपितु वे बीच मार्ग में ही रह जायंगे। वे यह भी कहते हैं कि यदि कोई अक्षरावस्था को प्राप्त करता है, तो वह मोह और वितृष्णा से रहित हो जायगा और माया के बन्धन से सच्ची मुक्ति प्राप्त करेगा। आत्म-लोक में न एक है, न दो; न सत् है, न असत् और इसी में लय होने का प्रयास करना चाहिए। इस लोक में सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी या आकाश कुछ नहीं है; न पीड़ा है, न दुःख; न कर्म है, न सुख है और न दुःख, जो कर्म के फल हैं। अधीनता का वहाँ प्रश्न नहीं उठता। अमीर, गरीब, संन्यासी—सभी वहाँ पहुँच सकते हैं। उन्होंने गोरखनाथ जी को अपने अहं का दमन करने और लघु बनने या अतार्किक, सिद्धि-रहित तथा सिद्धि-जन्य गर्व से दूर होने की सलाह भी दी अन्यथा माया का जाल उन्हें वास्तविकता से दूर फेंक देगा। जब तक देखने के लिए प्रकाश है, तब तक माया है। उन्होंने उन्हें ध्वन्यात्मक प्रणव शब्द (ॐ) को आदर्श रूप में अपनाने और उसकी सहायता से आत्म-लोक पहुँचने की भी सलाह दी। षट्-चक्रों से जो शब्द उन्होंने सुने थे, वे वास्तविक नहीं थे और प्रणव-शब्द, जब यह कारण और सूक्ष्म स्थानों से नीचे आया क्योंकि मध्यमा और पश्यन्ती उनके कानों तक पहुंची थीं और उससे भी आगे बढ़ने पर वास्तविक प्रणव को वे सुनेंगे। यही वह स्थिति थी; जिसमें कबीर थे।

भगवान् जी कुण्डलिनी (मेरुदण्ड के अन्त में उसके मूल में सर्प-कुण्डली)—जागरण, या मेरुदण्ड-स्थित षट्-चक्रों में रुचि रखते प्रतीत नहीं होते थे। एक बार जब मैं कदाचित् उन्हीं की साधना के ढंग के अनुसार संवेग निस्सारित कर रहा था,

उन्होंने मुझे इतनी तीव्रता के साथ संवेग निकालने के लिए झिड़का कि कहीं मेरे अन्दर के सर्प जाग न जायं। एक दूसरे अवसर पर उन्होंने मुझे बताया कि 'तुम्हारे द्वारा निस्सारित संवेगों में केवल 'ॐ ॐ' की केन्द्रीभूत ध्वनि आकाश में सुनाई पड़ती है, किन्तु तुम्हारे इष्ट की ध्वनि उसके साथ नहीं है।' यह कथन मेरी साधना में सुधार करने के लिए था, जिससे उस स्थिति में वह मेरे लिए उपयुक्त हो सके।

भगवान् जी के अनुसार साक्षात्कार एक प्रकार का दिव्य प्रकाश था, जो व्यक्ति की अनुभूति में आता है। निम्नलिखित से इसकी पुष्टि होती है—

(१) एक बार, जब बिना भगवान् जी को कुछ भी बताए कि मैं क्या कर रहा हूँ, मैं श्री रामकृष्ण परमहंस के उपदेशों और उनकी अन्य पुस्तकों का भगवती महाकाली के इष्ट के साथ गम्भीरतापूर्वक अध्ययन कर रहा था, उन्होंने मुझसे कश्मोरी में बताया कि "यिछ किताब वरान तोर छा गाश।" इसका अर्थ यह था कि यह व्यक्ति पुस्तक (किसो विषय पर पुस्तकें) पढ़ रहा है कि क्या उनमें प्रकाश है अथवा 'तोर' से आशय पुस्तकों का हो सकता है या उस स्थान के प्रति सङ्केत हो सकता है, जहाँ से मेरे द्वारा पढ़ी जानेवाली पुस्तकें आई थीं।

एक बार श्री रामकृष्ण परमहंस के एक भक्त उनका फोटो भगवान् जी के पास लाए। भगवान् जी ने उसे ध्यान से देखा और कहा कि 'वे एक पुरुष थे' और एक भक्त से उसे अपने कमरे की दोवार पर, जहाँ गुरु नानक और कुछ हिन्दू देवताओं के चित्र थे, टाँगने को कहा।

(२) पण्डित दीनानाथ तिकू साकार रूप के ईश्वर की

उपासना कर रहे थे। भगवान् जी ने मेरी उपस्थिति में उन्हें बताया कि 'तुम्हारे कण्ठ तक प्रकाश है, किन्तु तुम्हारा शरीर शून्य है।' बाद में वे भगवान् जो के शिष्य हो गए। साधना प्रारम्भ करने के लिए उन्होंने भगवान् जो से पूछा कि भगवत्साक्षात्कार के मार्ग पर कैसे अग्रसर हुआ जाय। भगवान् जी ने एक वाक्य में उत्तर दिया कि "जैसे मैं करूं, वैसे ही तुम करो।" इस शिष्य ने भगवान् जी के बाह्य कर्मों का शब्दशः अनुकरण किया। जब भगवान् जी अपनी चिलम पीते, वह हुक्का पीते; जब भगवान् जी थूकते, वह भो वह वैसा ही करते। जब भगवान् जी खाते या चाय पीते, तभी वह भी खाते। भगवान् जी के संगीतात्मक संवेगों को वह नकल करते। लोगों की दृष्टि में उन्होंने अपने को हास्यास्पद बना लिया, जो उन पर हँसा करते किन्तु लोगों के कटाक्षों की परवा किए बिना वे वैसा करते ही गए। अन्त में भगवान् जी को कृपा से उन्हें एक रात्रि में क्षीरभवानो के स्थल में साक्षात्कार हुआ, जब मैं और स्वामी अमृतानन्द भी उपस्थित थे। अगले प्रातःकाल भगवान् जी ने उदास मुद्रा में मुझे बताया कि 'दीनानाथ को प्रकाश मिला, किन्तु प्रकाश ऐसा है कि वह उसे मार डालेगा।' बाद में जब भगवान् जी भद्रकाली तीर्थ-स्थान में थे, उन्होंने दीनानाथ को दूर कर दिया और वे रैनावारी (श्रीनगर) में अपने निजी मकान में रहने लगे, जहाँ वे प्रख्यात थे क्योंकि वे भविष्यवाणियाँ करने लगे, जो सच निकलती थीं। कुछ अवसरों पर यद्यपि भगवान् जी ने उन्हें बुलवा भेजा, किन्तु उन्होंने यह कह कर अवज्ञा की कि 'मैं अब स्वयं भगवान् हूँ।' कुछ वर्षों बाद कैंसर से उनकी मत्यु हो गई। प्रश्न उठता है कि यदि शिष्य ने उनके (भगवान् जी के) आह्वान का

पालन किया होता और उनके दर्शनार्थं आए होते, तो क्या वे उस प्रकाश की, जिसने दीनानाथ को मारा, प्रवृत्ति बदलने में समर्थ होते ? यह एक विचारणीय बात है।

(३) भगवान् जी का प्रकाश (ज्योति-स्वरूप) के प्रति गहरा सम्बन्ध था क्योंकि अनेक अवसरों पर वे धूप और अगरबत्ती को अपनी धूनी की तरह सुलगती नहीं, अपितु प्रज्वलित रखते थे। उनकी महा-समाधि के कुछ दिनों बाद उनका एक शिष्य उस कमरे में सो रहा था, जहाँ भगवान् जी का आसन था। रात में उसने इस कमरे की बत्ती बुझा दी। वह निद्रा-मग्न होने हा वाला था कि उसके एक पैर के तलवे में प्रबल लात जैसी लगी। वह समझ गया कि बत्ती बुझाकर उसने गलती की है। उसने बत्ती जला दी और उसके बाद वह शान्ति-पूर्वक सोता रहा।

(४) एक बार मैं भगवान् जी के सामने बैठा उनकी धूनी की अग्नि को छेड़ रहा था। भगवान् जी ने कहा कि 'तुम समझते हो कि ये साधारण अंगारे हैं। त्रिकोटि देवता इस धूनी में आते हैं।' इसका तात्पर्य यह है कि देवताओं के आवाहन के समय प्रकाश विद्यमान रहना चाहिए अन्यथा अंधकार की शक्तियाँ आ सकती हैं और व्यक्ति को हानि पहुँचा सकती हैं या उसे अभि-भूत कर सकती हैं। कदाचित् यही कारण था कि गहरी साधना के काल (१६३०-३७) में उन्होंने एक छोटा मिट्टी का दीपक निरन्तर प्रज्वलित रखा था।

(५) एक अवसर पर, जब भगवान् जी क्षीरभवानी (तुलमुला) देव-स्थान पर थे, एक भक्त ने उनसे प्रश्न किया कि 'आप देवी-कुण्ड पर पुष्प, दुग्ध आदि अर्पित करने क्यों नहीं जाते, जैसा कि मन्दिर में आनेवाले अन्य दर्शनार्थी करते हैं,

किन्तु ऐसा न कर कुण्ड से दूर अपनी कुटिया में एकान्तवास करते हैं ?' भगवान् जी ने कहा कि 'वहाँ (कुण्ड में) चकाचौंध करनेवाला प्रकाश है ।' यह कथन स्पष्टतः ब्रह्म-ज्योति के आवरण को सन्दर्भित करता था, जो देवी और देवी माता को आवृत रखता है और जिसे हटाए बिना कोई उसके व्यक्तिगत तेज को नहीं देख सकता । यह तथ्य ईशोपनिषद् में उल्लिखित है, जहाँ यह प्रार्थना की गई है कि 'हे भगवन्, अपनी चकाचौंध करनेवाली चमक को हटाओ, जिससे भक्त वास्तविकता को देख सके ।' भगवान् जी ने आगे कहा कि 'हमारा उसे देखने का प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है, किन्तु महत्व की बात यह है कि वह हमारी ओर देखे अर्थात् हम पर अपनी दया की वर्षा करे ।'

आकाश की ओर देखते हुए भगवान् जी ने एक बार मुझे बताया कि 'तेज (प्रकाश) के चेतन-भण्डारों के अतिरिक्त वहाँ कुछ नहीं है ।'

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, भगवान् जी एक तत्वज्ञानी थे, जो अपनी तीसरी आँख या ज्ञान-नेत्र से प्रकृति को तथा स्थूल और सूक्ष्म तत्वों के रंग को देख सकते थे । उच्चतर स्तर की अनुभूति के लिए उनके द्वारा चुने गए व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुरूप उनसे आन्तरिक रूप से मार्ग-दर्शन पाते थे या तत्वों में से कुछ का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सतत अग्नि प्रज्वलित रखने या अन्य उपाय करने का निर्देश पाते थे ।

भगवान् जी ने एक बार मुझे बताया कि 'ब्रह्म का एक वृक्ष के रूप में ध्यान करो और उसकी शाखाओं (शिव, नारायण आदि की प्रतिनिधि) में से किसी एक पर, जिसे तुम चाहो, बैठ जाओ । उनमें से किसी की भी भक्ति करने से एक ही लक्ष्य

की प्राप्ति होगी।'

वे उपासना में किसी को उसके अपने इष्ट का अनुसरण करने से डिगाते नहीं थे और न ही किसी को कोई इष्ट वे सीधे सुझाते थे। अपितु सांकेतिक रूप से ही बताते थे।

भगवान् जी ने, जब वे क्षीरभवानी में थे, एक व्यक्ति के पास जो अनेक धार्मिक पुस्तकें थीं, उनमें से विष्णु सहस्रनाम की एक प्रति उससे माँगी। उसके पृष्ठों को पलटते हुए उन्होंने उसका निरीक्षण किया, अनेक बार मेरी ओर दृष्टिपात किया और पुस्तक उस व्यक्ति को वापस कर दी। यह मुझे नारायण की उपासना में लगने हेतु संकेत था क्योंकि मेरा पूर्व इष्ट मुझे सहायक नहीं सिद्ध हुआ था।

भगवान् जी ने एक बार अपने एक भक्त श्री प्राणनाथ कौल से, जो आजकल भगवान् गोपीनाथ जी ट्रस्ट के सेक्रेटरी हैं, शेषनाग पर लेटे हुए विष्णु के एक फोटो-चित्र (जिसे किसी ने भगवान् जी को दिया था) को शीशे में मढ़वाने के लिए कहा। जब उन्होंने फोटो मढ़वाकर वापस की, तब भगवान् जी ने उनसे कहा कि 'इधर देखो, यह चित्र कितना सुन्दर है।' यह उन्हें विष्णु की उपासना आरम्भ करने का संकेत था।

यद्यपि प्रारम्भिक लोगों को वे साकार उपासना का सुझाव देते थे किन्तु देवताओं के साकार स्वरूपों की उपासना उन्हें रुचिकर प्रतीत नहीं होती थी क्योंकि वे कहा करते कि 'इगव ताप परुन।' इसका अर्थ है धूप अर्थात् सूर्य के तेज की उपासना करना, न कि वस्तु—सूर्य की पूजा। इस सम्बन्ध में उन्होंने एक अवसर पर कहा कि 'यिगव वीरि शिहिलिस तल पकुन।' इसका अर्थ है बेंत वृक्षों के नीचे घूमना। बेंत वृक्षों की छाया शीतल होती है। छाया के नीचे चलने का अर्थ है व्यग्र रूप की

उपासना, न कि पूर्ण समर्पण के साथ—"चाहे जो हो" की भावना से ईश्वर-साक्षात्कार के क्षेत्र में कूदना। यद्यपि निराकार उपासना कठिनाइयों और क्लेशों से रोमाञ्च-पूर्ण है, तथापि वे क्रमशः अपने भक्तों को साकार से निराकार उपासना में ले आने को उत्सुक थे। यही औपनिषद विचार के अनुरूप भी है।

तस्मात् साकारं अनित्यं
नित्यं निराकारमिति ।

एक दिन भगवान् जी के एक भक्त ने उनसे यह पूछने का साहस किया कि 'आपके गुरु कौन हैं ?' भगवान् जी ने अपने सामने एक ओर रखी हुई भगवद्गीता की ओर संकेत करते हुए उत्तर दिया कि 'भगवद्गीता के ७०० श्लोकों में से कोई श्लोक किसी का गुरु हो सकता है। वास्तव में ईश्वर ही, जो वास्तविक आत्मा है, व्यक्ति का गुरु है।'

एक दिन भगवान् जी के समक्ष एक संगीत-कार्यक्रम चल रहा था। जब कि गुरु की महिमा का वर्णन करनेवाली एक कविता गाई जा रही थी, उसके एक छन्द का उच्चारण किया गया, जिसका भाव यह था कि 'हे भक्त, अपने मन और प्राण को साथ रखते हुए अपने गुरु के चरण-कमलों की पूजा करो।' भगवान् जी ने मेरी ओर संकेत करते हुए कहा कि "यि गछि यशुन" अर्थात् 'अपने गुरु के चरणों में आत्म-समर्पण करने का सौभाग्य तुम्हें मिले।' मैं ईश्वर की पूजा कर रहा था और वे चाहते थे कि मैं गुरु की उपासना करने लगूँ क्योंकि कदाचित् मैं अनुग्रह के प्रथम स्तर को पार कर चुका था, जिसमें ईश्वर भक्ति द्वारा साधक के पास आता है और वे चाहते थे कि मैं उस

स्तर पर पहुँचूं जहाँ गुरु ईश्वर-रूप में पूजित होता है। इस अनुभूति से वास्तविक आत्म-तत्व अहं-शून्य अवस्था में प्रकाशित होता है, जिसमें साधक और गुरु दोनों सार्वभौम आत्मा में लय हो जाते हैं।

भगवान् जी अपने भक्तों का अपने उपदेशों को ग्रहण करने की उनकी क्षमता के अनुरूप मार्ग-दर्शन करते थे और यह प्रेरणा द्वारा किया करते थे। मुख के शब्द द्वारा कदाचित् ही ऐसा करते थे। जो भक्त वैश्विक उद्वेगों (स्पन्दनों) के अनुरूप संगीतात्मक उद्योग निस्सारित करने की उनकी अपनी पद्धति का अनुसरण नहीं कर पाते थे, वे भगवान् जी द्वारा असफल माने जाकर त्यक्त नहीं किए जाते थे अपितु वे देवताओं के साकार स्वरूपों की उपासना करने में उनकी सहायता करते थे और वे भी धीरे-धीरे प्रगति करते थे।

भगवान् जी ने एक बार एक भक्त को बताया था कि 'ईश्वर साक्षात्कार के लिए वांछित योग्यता है 'मेहनत–'पनुन्यन बेय गुरुकृपा' अर्थात् व्यक्ति का अपना निजी प्रयास और गुरु की कृपा।

महानिर्वाण-प्राप्ति की एक रात्रि पूर्व भगवान् जी ने एक भक्त की उपस्थिति में अपनी स्मृति से पञ्च-स्तवी के पाँच अध्यायों में से चार का उच्चारण किया। ५ वें अध्याय के निम्न श्लोक का पाठ करने के बाद भगवान् जी अचानक चुप हो गए—

अजानन्तो यान्ति क्षयमवश्यमन्योन्य-कलहै—
रमी माया-ग्रन्थौ तव परिलुठन्तः समयिनः।
जगन्मातर्जन्म-ज्वर भय-तमः कौमुदि ! वयं
नमस्ते कुर्वाणः शरणमुपयामो भगवतीम्॥

कदाचित् उन्होंने ऐसा उस भक्त के हित में किया, जो देवी का उपासक था और इससे आगे नहीं जा सकता था। यद्यपि भगवान् जी ने उसे संवेग-निस्सारण की अपनी पद्धति में ले जाने का प्रयत्न किया था, जिसमें वह सफल नहीं हुआ या ऐसा हो सकता है कि वे देवी की महिमा के आस्तिक दर्शन के स्तर में भक्त को यह अनुभव कराने के लिए चले गए हों कि देवी ब्रह्म से भिन्न नहीं है अथवा यह सब उनके मन की मौज रही हो।

जहाँ तक मैं देख सका और भगवान् जी के साथ दो दशकों से अधिक समय के अपने व्यक्तिगत सम्पर्क से समझ सका, देवियाँ तेज की चेतन इकाइयाँ हैं, जो इस धरातल पर आईं और (पृथ्वी के) विभिन्न स्थानों पर एक हजार या सम्भव है दो हजार वर्षों तक रहीं और फिर उस उद्गम को लौट गईं, जहाँ से वे निकली थीं।

इस प्रकार हम यह स्पष्ट कर सकते हैं कि शारदा भगवती, जिनका मन्दिर कृष्णगंगा घाटी में स्थित है, पाकिस्तानी आक्रामकों के हाथों में क्यों चली गईं क्योंकि कदाचित् वे वहाँ थीं ही नहीं। कहा जाता है कि लगभग १०० वर्ष पूर्व क्षीर-भवानी देव-स्थान की श्री राज्ञी भगवती अपने स्थान को छोड़-कर निकटस्थ सरोवर में चली गई थीं, किन्तु भक्तों की प्रार्थना पर स्थान के अपने मूल प्रपात में लौट आईं। कश्मीर की घाटी में देवी के अनेक पवित्र स्थान हैं, किन्तु कुछ की अब पूजा नहीं होती। देवियों के रूप में इन चेतन-शक्ति-भण्डारों की महिमा भी विभिन्न रूप की प्रतीत होती है। जब कि कुछ में वनस्पति मूल की कुछ वस्तुएँ चढ़ाई जाती हैं, तो अन्य में आमिष चढ़ाया जाता है।

एक भक्त भगवान् जी के समक्ष बैठा हुआ था और अपने मन में इस ऊहा-पोह में पड़ा हुआ था कि क्या सच तब भी बोलना चाहिए, जब वैसा करने से कोई संकट में पड़ सकता है। भगवान् जी ने उसे उत्तर दिया—'स यं शिवं सुन्दरं।'

भगवान् जी प्रतिदिन अपना यज्ञोपवीत धोते थे और तिलक लगाते थे तथा अन्य कर्म करते थे, किन्तु सामान्य रूप से धर्म के आधार पर वे भेद-भाव नहीं रखते थे। श्री शिबनलाल तुर्की ने एक बार भगवान् जी को बताया कि 'मेरा काम ऐसा है कि मुझे जब-तब विधर्मियों के साथ भोजन करना पड़ता है।' भगवान् जी ने उत्तर दिया कि 'क्या हिन्दू एक व्यक्ति है, और मुसलमान दूसरा ?'

नील बव एक सन्त थे, जो जैन्दार मोहल्ला, श्रीनगर में रहते थे। वे गाली-युक्त भाषा का प्रयोग करते थे, किन्तु थे दूर-द्रष्टा सिद्ध पुरुष। १९५७-६८ की अवधि में वे भगवान् जी के दर्शनार्थ कभी-कभी आया करते और भगवान् जी के कमरे की एक विशेष खिड़की पर बैठा करते। एक दिन एक महिला एक पकाने के पात्र में पका हुआ भोजन लेकर आई और उसे भगवान् जो के सामने रख दिया। सामान्यतः भगवान् जी बड़ा आचार-विचार दिखाते थे और अपना भोजन ऊनी कपड़े पर रखी एक थाली में लिया करते थे, किन्तु इस अवसर पर अपने सामान्य अभ्यास के विपरीत उन्होंने भोजन को जमीन पर रखा, उसमें से कुछ भोजन निकाला और नील बव को दिया। नील बब ने उसे यह कह कर लेने से अस्वीकार कर दिया कि 'जमीन पर रखे जाने से यह अपवित्र है।' भगवान् जी ने स्वयं ही सारा भोजन समाप्त किया। नील बब अब भी जाति के जाल में पड़े एक कट्टर ब्राह्मण सन्त थे और भगवान् जी

चाहते थे कि वे जाति श्रौर सम्प्रदाय के बन्धनों से ऊपर उठें। इस घटना के बाद जब कभी वे उनके स्थान पर आये, उन्होंने उनके प्रति उदासीनता ही दिखाई।

भगवान् जी ईश्वर-साक्षात्कार की प्राप्ति हेतु कभी किसी को अपना घर-बार, पत्नी या बच्चों का त्याग करने की सलाह नहीं देते थे। वे कहते थे कि एक संसारी व्यक्ति भी वैराग्यवान् हो सकता है किन्तु उच्चतर अनुभूति के लिये वे उन लोगों को स्वीकार न करने में बड़े कठोर थे, जो यौन-भोग का त्याग नहीं करते थे। इसका कारण जानना कठिन नहीं है क्योंकि एक व्यक्ति की बुद्धि में ब्रह्म-ज्ञान के दो केन्द्र अवस्थित बताये गये हैं, एक चिदाकाश के निकट और दूसरा उसके परे पृष्ठ-भाग में। ब्रह्मचारी संयम के द्वारा इन दोनों को सुरक्षित रखता है और केवल तभी वह ब्रह्म-साक्षात्कार कर पाता है। वे प्रसन्न होते थे, जब कोई ब्रह्मचारी आध्यात्मिक प्रगति के लिये उनके पास आता था।

भगवान् जी आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत लोगों का बड़ा सम्मान करते थे। मास्टर शङ्कर पण्डित, जो बिस्को हाई स्कूल, श्रीनगर के प्रधानाध्यापक थे, वेदान्त के विद्वान्, ज्ञानी और एक सन्त थे तथा अपने जीवन भर उन्होंने सन्तों का सत्सङ्ग किया और वे प्रायः भगवान् जी के प्रति श्रद्धा प्रकट करने आया करते थे। एक बार जब मास्टर जी आये, मैं भगवान् जी के सामने बैठा हुआ था। भगवान् जी उन्हें देखकर प्रसन्न हुये और चाय से उनका सत्कार किया। मुझे आश्चर्य हो रहा था और उदास भी हो गया था कि इनका इतना भव्य सत्कार क्यों किया गया। लगभग एक घण्टे बाद मास्टर जी ने विदा ली। मेरे विचारों को अनुभव कर भगवान् जी ने स्वतः कहा कि 'तुम

इतने खिन्न क्यों हो ? वे (मास्टर) एक सूर्य हैं।'

वृद्धावस्था से असमर्थ होने के कारण मास्टर जी बाद के वर्षों में भगवान् जी के पास नहीं आ सके, किन्तु भगवान् जो अपने जन्म-दिन पर प्रति वर्ष उन्हें भोजन भेजते रहे, उस वर्ष को छोड़कर, जिसमें मास्टर जी की मृत्यु हुई। मास्टर जी ने कहा था कि 'भगवान् जी ने मुझे प्रसाद नहीं भेजा, अतः इस वर्ष मेरी मृत्यु होगी' और इसके कुछ मास बाद भगवान् जी की कृपा से भगवद्गीता के ११वें अध्याय का पाठ करते हुये उनकी मृत्यु हो गई। ये मास्टर जी ही थे, जिन्होंने कहा था कि १९४७ के आगे कश्मीर को यदि कोई बचा सकता है, तो केवल यही रहस्यमय महात्मा।' दुर्जय इच्छा-शक्ति और वीरोचित प्रयास के साथ, लगभग २१ वर्षों तक शारीरिक कष्टों की उपेक्षा करते हुये उन्होंने कश्मीर की उन विपत्तियों से व्यापक रूप से रक्षा की, जिनमें समस्त भारत निमग्न हो गया था।

भगवान् जी ज्ञानमार्गी-शाखा के अद्वैतियों के उस वर्ग में से नहीं थे, जो अपने को कर्म-हीन आत्मा मानते हैं और पुण्यवानों की सहायता तथा पाप का नाश करने के कार्य में हाथ नहीं बँटाते, अपितु महान् व्यक्तिगत त्याग कर उन्होंने वास्तव में वातावरण का निर्माण करने के कार्य में भाग लिया। यह लल्लेश्वरी के उदाहरण से, जो १४ वीं शती के कश्मीर के महत्तम रहस्यपूर्ण सन्तों में से एक थीं, स्पष्ट होगा। वे अपने 'वाक्' छोड़ गई हैं, जिनमें उच्चतम शैविक दर्शन निहित है और जो लगभग ५०० वर्षों के बाद, जब वे पहले पहल कहे गये थे, आज भी वाह-वाह के साथ गाई जा रही हैं। जब शाह हमदान घाटी में आये और वे उनसे मिलीं, तब कश्मीर के बदलते हुये चित्र के सम्बन्ध में उन्होंने हस्तक्षेप नहीं किया—कदाचित् कर नहीं सकीं।

ऐसा कहा जाता है कि विश्व में यदि कोई ज्ञानी होता है, तो उसके प्रभाव से न केवल उसके शिष्य अपितु सारा संसार ही लाभान्वित होता है।

जब भगवान् जी के छोटे भाई पण्डित जियालाल काक की मृत्यु हुई, उनकी बहन दुःख में डूबी हुई उसकी सूचना उन्हें देने आईं। उन्होंने उन्हें बताया कि 'अब उसे इस संसार में क्या करना था। वह राज-योगी होने के लिये गया है और उसके लिये दुःख करना निरर्थक है।'

अपने शरीर के विभिन्न अंगों से जब वे संवेग निस्सारित करते थे या जब वे धूम्र-पान करते थे, तब वे कुछ पाठ करते थे या नहीं अथवा क्या पाठ करते थे, इसे वस्तुतः हम समझ नहीं सके। मन्त्रोच्चारण से उत्पन्न स्पन्दन उन मूल स्पन्दनों से सम्बन्धित माने जाते हैं, जो हिरण्यगर्भ से उत्पन्न हुए हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जप से उत्पन्न लय-पूर्ण स्पन्दन ५ आवरणों के अस्थिर स्पन्दनों को नियमित करते हैं।

एक दिन भगवान् जी अपनी आँतों की लय-पूर्ण गति द्वारा संवेग निस्सारित करते हुए लेटे थे। मैं भी उनका अनुकरण करने लगा। भगवान् जी ने कहा कि 'तुम क्या कर रहे हो? यह संवेग, यदि ठीक से न किया गया, तो विश्व को उलट देगा।' एक दिन उन्होंने मुझे बताया कि 'मेरे द्वारा निस्सारित संवेग उनके कमरे की छत तक या अधिक-से-अधिक अगली उच्चतर मंजिल की छत तक पहुँच सकते हैं, किन्तु वहाँ वे नष्ट हो जाते हैं।' एक अन्य अवसर पर उन्होंने मुझे बताया कि 'तुम्हारे द्वारा निस्सारित संवेग मृत-जात हैं।'

इन संवेगों के स्वरूप पर मैं कोई प्रकाश नहीं डाल सकता क्योंकि यह एक अव्यक्त विषय है, किन्तु भगवान् जी को इस

पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था। इन संवेगों के स्वरूप का एक सूत्र मुझे तब मिला, जब उन्होंने मुझे बताया कि 'तुम स्नायु-केन्द्रों के संवेग फेंक रहे हो, जो देव-लोक की क्रिया है, मनुष्य-लोक की नहीं।' उन्होने आगे कहा कि 'तुम इन संवेगों के बाहर नहीं निकल सकते।' अर्थात ये संवेग स्व-चालित हो जायँगे और मैं उन्हें रोकने में समर्थ नहीं होऊँगा। अपने बचपन में मैंने एक सन्त नील काक (श्री गोपीचन्द जित्शी, शीहली टेंग, श्रीनगर के मकान में रहनेवाले) को देखा है, जो इस अभ्यास को अपने जीवन के अन्त तक करते रहे क्योंकि कदाचित् वे इन संवेगों को नियन्त्रित नहीं कर सके। संवेग-निस्सारण का यह अभ्यास सूफी सन्तों में बहु प्रचलित है और इसे 'ज़िकरे हक' कहा जाता है। सूफी-मत मूलतः भारतीय विचारों से उद्भूत था, किन्तु यह पश्चिम एशिया को गया और वहाँ से भारत को वापस आया। 'नई बोतलों में पुरानी शराब।' मेरा यह विश्वास है कि आत्म-साक्षात्कार के लिए भगवान् जी इसे बहुत श्रेष्ठ और सीधा उपाय मानते थे, यद्यपि इसमें बहुत पीड़ा-दायक प्रयास करना पड़ता है और विविध कष्ट सहन करने होते हैं।

एक बार उन्होंने कहा कि 'एक योगी ईश्वर का साक्षात्कार पा सकता है, किन्तु एक विचारवान् ब्रह्म के सभी स्वरूपों (पादों) का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। विचार (अन्तर्निरीक्षण) द्वारा व्यक्ति की बुद्धि-शक्ति बढ़ती है और वह सूक्ष्म विचार-तरंगों को पकड़ने में समर्थ बनता है तथा नए से नए विचार उत्पन्न होते हैं जो चिदाकाश में रहते हैं (क्योंकि विचारों का नाश नहीं होता)। एक व्यक्ति के सभी विचार सर्व-व्यापिका त्रिकाल-दर्शिनी शक्ति में, जो सारी सृष्टि में व्याप्त है, प्रवेश करते हैं और वहां बने रहते हैं। समान विचार

मिश्रत हो जाते हैं और अच्छे या बुरे के लिए एक भयंकर सक्रिय शक्ति उत्पन्न करते हैं। कदाचित् यह उनके शारीरिक अंगों के लय-पूर्ण संवेगों या धूम्र-पान की लयात्मकता के कारणों में से एक था, मानों वे सर्व-व्यापी जीवन तरंगों में अपने संवेग फेंका करते थे और उन संवेगों से स्वयं प्रभावित होते थे। इस प्रकार, जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, यह स्पष्ट है कि उनके कर्मों में भावात्मक प्रार्थना को कोई स्थान प्राप्त नहीं था। वे कर्म में विश्वास करनेवाले एक महापुरुष थे।

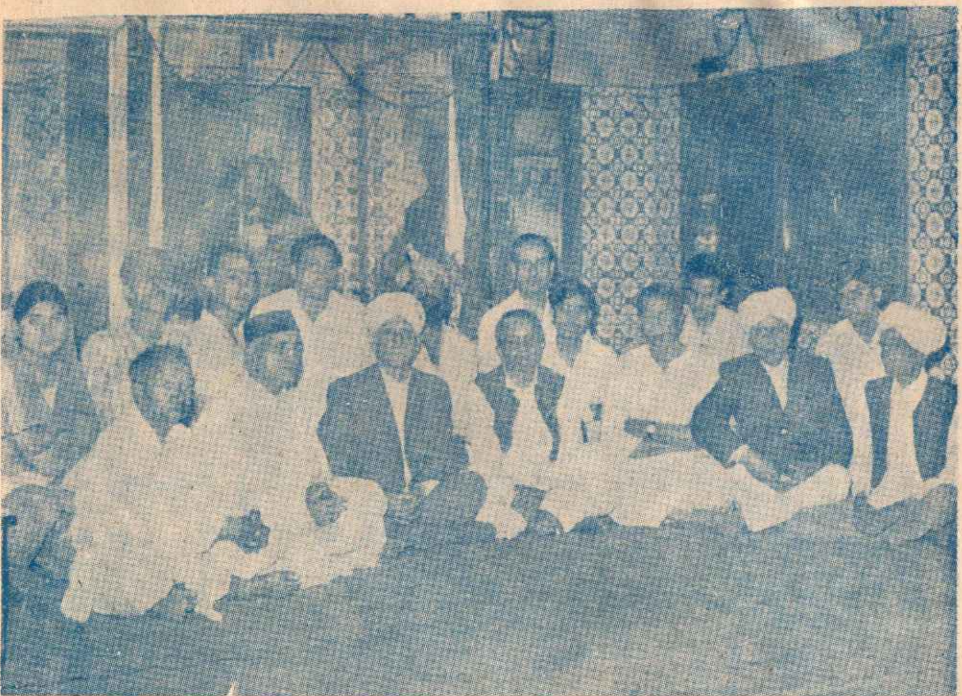
इस अध्याय को समाप्त करने के पूर्व एक घटना का स्मरण करना प्रसङ्गानुकूल होगा, जैसा कि श्री सोमनाथ काक द्वारा वर्णन किया गया है और जिसमें शाला कदल, श्रीनगर के श्री जानकीनाथ भान ने इस जटिल प्रश्न को कि 'क्या सन्तों को आध्यात्मिक और भौतिक स्तरों में लोगों की सहायता करनी चाहिए ? क्या ऐसी सहायता से सन्तों द्वारा महान त्याग और तपस्या से संचित आध्यात्मिक कोष समाप्त नहीं हो जायगा ?' भगवान् जी के सम्मुख रखा था। भगवान् जी ने अपनी मोहक शैली में उत्तर दिया था कि 'एक मनुष्य या पशु अपने मांसल और विशाल शरीर के साथ एक नदी के पार तैर कर जा सकता है। क्या चींटी के समान एक छोटा कीड़ा सहायता के बिना ऐसा कर सकता है ? उसकी सहायता करनी ही होगी।' इसका यह तात्पर्य निकला कि संसार को पार करने के लिए एक सन्त का यह कर्तव्य है कि वह भौतिक और आध्यात्मिक दोनों क्षेत्रों में सबकी सहायता करे।



अध्याय—१५

भूतपूर्व एवं वर्तमान भक्त और शिष्य

भगवान् जी का चरितात्मक अध्ययन तब तक पूर्ण नहीं होगा जब तक कि उन व्यक्तियों का भी उल्लेख न किया जाय जिन्हें उन्होंने विशेषतया आशीर्वाद दिया था। इस सम्बन्ध में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि जिज्ञासुओं में से प्रत्येक में जो दिव्य चिनगारी उन्होंने प्रज्वलित की थी उससे सभी समान रूप से लाभान्वित नहीं हुए। अन्य लोग भी अवश्य हुए होंगे जिनके आध्यात्मिक विकास में उन्होंने निश्चयतः सहायता की होगी, किन्तु उनके सम्बन्ध में हम कुछ भी नहीं जानते। यह एक तथ्य है कि कभी-कभी वे ऐसे लोगों को शिक्षा दिया करते थे जो शरीर से उनके समक्ष उपस्थित नहीं होते थे। वे अपने सूक्ष्म शरीरों में उनके पास निर्देश प्राप्त करने के लिए विद्यमान रहे होंगे। इस सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात थी उनकी शिक्षाओं या पद्धतियों को हृदयंगम करने की साधना की क्षमता जो उसके विगत जीवनों के संस्कारों पर निर्भर करती थी। इस बात को समझाने के लिए कश्मीर के महान् रहस्यपूर्ण सन्त पण्डित प्रसाद जू साहिब (जो खरिदोरी, द्वितीय ब्रिज, श्रीनगर में रहते थे) का पण्डित श्रीधर जू धर द्वारा सूचित उदाहरण यहाँ उल्लेखनीय है। स्वामी जी प्रायः यह कहते बताए गए हैं कि 'अष्ट-सिद्धियाँ मेरी बैठक के द्वार के पास पड़ी झाड़ू में बँधी हुई यहाँ विद्यमान हैं। मैं उन्हें अपने पास आने की अनुमति नहीं देता।' स्वामी जी इतनी उच्च श्रेणी के सन्त थे कि कश्मीर के प्रख्यात सन्तों में से एक स्वामी आनन्द जी प्रति वर्ष उनके जन्म-दिन पर उन्हें एक उपहार भेजा करते थे। पण्डित



आगे, बाएँ से—सर्वश्री एम. साथू, जी. मल्ला, एस. धर, एस. फ़ोतदार, जे. नेहरू, ए. दफ़्तरी, ए. कौल
पीछे, „ —सर्वश्री कु० जे. पटवारी, टी. रैना, पी. कौल, एस. फ़ोतदार, बाबा बालकृष्णदास,
एम. तिक, एस. गंज, एस. तुर्की, जी. कौल [ट्रस्ट की प्रबन्ध-समिति के सदस्य]

गोपीनाथ साहिब स्वामी जी के छुटे भाई थे और अपने सारे जीवन में उन्होंने उनको निष्ठापूर्वक सेवा की। स्वामी जी एक महान् योगी थे। वे निरन्तर अपने सत्-चित्-आनन्द स्वरूप में मग्न रहते थे और उनके भाई उनके मुख में भोजन के कौर रखकर उन्हें खिलाया करते थे। अपने भाई के प्रति उनकी भक्ति इसी कोटि की थी। किन्तु स्वामी जी प्रायः कहा करते थे कि यद्यपि वे उनकी आध्यात्मिक प्रगति के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय करते रहे, किन्तु उनके भाई की ओर से कोई प्रतिक्रिया या प्रभाव नहीं दिखाई दिया। अतएव आध्यात्मिक विकास एक जन्म का नहीं, अपितु अनेक जन्मों का विषय है।

आध्यात्मिक विकास का उपाय कोई आकस्मिक प्रक्रिया नहीं है क्योंकि प्रत्येक साधक के लिए एक गुरु, साथ ही प्रत्येक के लिए अनुसरणीय मार्ग भी उसके पूर्व संस्कारों के अनुसार पहले से निश्चित प्रतीत होते हैं।

इस जीवनी को पूर्ण करने के लिए भगवान् जी के कुछ भक्तों का संक्षिप्त विवरण विषयान्तर नहीं प्रतीत होगा।

अवधि १९३७-४७

१ पण्डित नील कौल सराफ़: इनके निवास-स्थान में भगवान् जी के ठहरने की अवधि (१९३७-४७) में ये उनके सम्पर्क में आए और विविध देव-स्थानों की यात्राओं में ये प्रायः उनके साथ रहे। ये एक साधक थे और कदाचित् स्वयं भगवान् जी से दीक्षा प्राप्त की थी।

२ एक सिख सन्त मैदानों से आए थे, उनके साथ लगभग तीन मास रहे और उनके द्वारा पूर्णतया दीक्षित किए गए। इनका पता ज्ञात नहीं है।

३ पण्डित महेश्वरनाथ जित्शी, मलपुरा, श्रीनगर बड़े वैराग्यवान् व्यक्ति थे। ये केवल अपने द्वारा कूटे हुए चावल को खाते थे। वे कहते थे कि उन्हें श्री शारिका भगवती ने भगवान् जी से दीक्षा लेने का निर्देश दिया था। भगवान् जी ने उन्हें एक भोजन, एक पेय और धूम्र-पान के लिए अपनी चिलम दी तथा उनसे जाने के लिए कहा। बाद में वे एक अच्छे सिद्ध हुए और दीक्षा के कुछ वर्षों बाद उनकी मृत्यु हो गई।

४ पण्डित भोलानाथ पुरोहित : इन्होंने अनेक वर्षों तक भगवान् जी की सेवा की और चिलम से धूम्र-पान करते हुए संवेग-निस्सारण की भगवान् जी की अपनी पद्धति का अनुसरण करने में ये सफल हुए। अपनी मृत्यु से पूर्व इन्होंने भी आध्यात्मिकता के पथ पर अच्छी प्रगति की।

अवधि १९४७ से आज तक

५ पण्डित प्रेमनाथ मनवट् : ये एक अध्यापक थे। इनके पूर्वज वेदान्ती थे। इन्होंने भगवान् जी की, जब वे श्रीनगर में या श्रीनगर के बाहर विभिन्न देव-स्थानों पर रहे, सेवा की। अनेक अवसरों पर भगवान् जी स्वयं चिलम से धूम्र-पान कर चुकने पर इन्हें उसे दिया करते। ये भगवान् जी की साधना की अपनी पद्धति का अनुसरण करते प्रतीत होते थे और वे (भगवान् जी) इनकी प्रगति से सन्तुष्ट दिखाई देते थे। क्योंकि इनके अन्य सम्बन्ध थे, मुझे सन्देह है कि इन्हें अपने जीवन-काल में साक्षात्कार हुआ या नहीं।

६ पण्डित दीनानाथ तिकू : भगवान् जी के दर्शन सम्बन्धी अध्याय में इनके सम्बन्ध में उल्लेख किया जा चुका है। भगवान् जी की कृपा से इन्होंने क्षीरभवानी पीठ में दिव्य ज्योति का साक्षात्कार किया था।

७ पण्डित गोपीनाथ सुल्तान : ये जम्मू और कश्मीर राज्य के 'गेम प्रिज़र्वेशन' विभाग के एक कर्मचारी थे और १९४७ में जब अस्करदू में नियुक्त थे, पाकिस्तानी आक्रामकों द्वारा बन्दी बना लिए गए थे। कुछ महीनों बन्दी रहने के बाद ये श्रीनगर वापस आएं और भगवान् जी के अनुयायी हो गए तथा जिस प्रकार वे चिलम पीते थे, उसी प्रकार ये भी चिलम पीने लगे। आध्यात्मिकता की इन्हें अति मात्रा मिल गई और कुछ वर्षों के लिये ये अपने मस्तिष्क का सन्तुलन खो बैठे। इस अवधि में इनकी पत्नी ने भगवान् जी से सम्पर्क स्थापित किया और उन्होंने उसे बताया कि 'वे (गोपीनाथ सुल्तान) समय पर बिलकुल सामान्य स्थिति में आ जायँगे। ठीक उसी प्रकार जैसे तुम हो या मैं स्वयं हूँ।' आजकल ये सर्वथा सामान्य हैं और साक्षात्कार के मार्ग पर उत्तम रूप से स्थिर एक सन्त हैं। ये भगवान् जी के शिष्य पण्डित दीनानाथ तिकू को अपना गुरु मानते हैं।

८ पण्डित गोविन्द कौल : ये भगवान् जी के प्रारम्भिक बचपन से ही उनके साथी रहे हैं, जो उनका बड़ा सम्मान करते थे। प्रतीत होता है कि पिछले अनेक जन्मों से इनका भगवान् जी से सम्पर्क रहा है। यद्यपि ये भगवान् जी की अपनी पद्धति को ग्रहण करते प्रतीत नहीं होते, तथापि उनकी कृपा से ये सम्भवतः साकार उपासना द्वारा आध्यात्मिक विकास के पथ में अग्रसर हैं।

९ पण्डित रघुनाथ सप्रू : सन्त बालक जू काव के शिष्य। भगवान् जी जब चन्दपुरा में ठहरे थे, उस अवधि में उनके स्थान में ये प्रायः आया करते थे और उनके जन्म-दिवस के

आयोजनों में कुछ वर्षों तक ये सक्रिय रूप से भाग लेते रहे। एक बार ये गम्भीर रूप से बीमार पड़े। भगवान् जी ने इन्हें अपने स्थान में बुलवाया। ये उनके साथ लगभग तीन सप्ताह रहे और स्वस्थ होकर घर लौटे। भगवान् जी के प्रति इनकी अगाध श्रद्धा थी और उनके महा-निर्वाण के समय उपस्थित तीन व्यक्तियों में से एक यही थे।

१० पण्डित गोपीनाथ धर : ये भी दो दशकों से अधिक समय तक भगवान् जी के भक्त रहे। दुर्भाग्यवश ये भी भगवान् जी द्वारा उपदिष्ट उपासना-पद्धति को अपना नहीं सके, किन्तु साकार उपासना से ये आध्यात्मिक विकास के पथ पर भले प्रकार आरूढ़ थे।

११ पण्डित शङ्करनाथ ज़ाडू : ये लगभग तीन दशकों तक भगवान् जी के प्रति श्रद्धा अर्पित करने आते रहे। उनके अन्य सम्बन्ध भी थे किन्तु उन्होंने कभी भगवान् जी की साधना की पद्धति का अनुसरण करने का प्रयास कदाचित् उससे होनेवाले कष्टों के कारण नहीं किया। तथापि वे अपनी साकार उपासना से अच्छी प्रगति करते प्रतीत होते हैं। पण्डित ज़ाड् श्री राज्ञा भगवती के एक भक्त पण्डित सम काक के दर्शनार्थ जाया करते थे। उन्होंने श्री ज़ाड् से कहा कि 'भगवान् जी के दर्शनार्थ मत जाओ क्योंकि वे एक मस्ताना सन्त हैं।' किन्तु कुछ दिनों को छोड़कर भगवान् जी के दर्शनों के आकर्षण का प्रतीकार वे नहीं कर सके। जैसे ही वे भगवान् जी के समक्ष बैठे, उन्होंने उनको बताया कि 'आपका सम्पर्क मुझसे छः पूर्व जन्मों से है। क्या तुम समझते हो कि इन बन्धनों को कोई तोड़ सकता है?'

१२ स्वामी अमृत आनन्द : ये श्री शिवानन्द आश्रम, ऋषि-केश में प्रचार-मन्त्री के रूप में अनेक वर्षों तक कार्य करते रहे।

जब ये १९५० में कश्मोर आये, ये भगवान् जी से मिले, जिन्होंने इन्हें एक नई चिलम दी। इन्होंने अनेक अवसरों पर क्षीरभवानी देव-स्थान में भगवान् जी की सेवा की और जब वे श्रीनगर में थे, तब भी ये उनके दर्शनार्थ आते रहे। भगवान् जी के निर्देशानुसार ये तभी से क्षीरभवानी देव-स्थान में निवास कर रहे हैं। इन्होंने देवी मां का साक्षात्कार किया है और आत्म-अनुभूति के अन्य उपायों का अन्वेषण कर रहे हैं।

१३ बद्रीनाथ ख़ुदबल्ली : ये लगभग दो दशकों तक भगवान् जी के सम्पर्क में रहे हैं और उनकी व्यक्तिगत सेवा विशेष कर उनके जीवन के अन्तिम दो वर्षों में की तथा उनके महा-निर्वाण के समय उनके पास विद्यमान रहे। प्रतीत होता है कि पूर्व जन्म के संस्कार इनकी प्रगति में बाधक रहे। इन्होंने कुछ लोगों को नीरोग किया। १९७२ के वर्ष में इनकी मृत्यु हुई।

अब मैं भगवान् जी के उन भक्तों का उल्लेख करूँगा, जो भगवान् जी के ट्रस्ट और नव-निर्मित आश्रम (जहाँ उनकी प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई है) के सक्रिय सदस्य हैं और भावी क्रियाशीलता के सूत्रधार हैं। भगवान् जी ने इन पर कृपा की वर्षा की थी और ये आध्यात्मिक प्रगति के पथ पर उन्नतिशाल हैं।

१४ पण्डित प्राणनाथ कौल : ये भगवान् गोपीनाथ जी ट्रस्ट के मन्त्री हैं। ये लगातार ७ वर्षों तक प्रतिदिन उनके स्थान पर आते रहे थे, श्रीगुरु-चरणों में २ से ३ घण्टे तक रहा करते और उनकी धूनी तथा उनकी निजी सुख-सुविधा की देख-भाल किया करते थे। आश्रम के ये शक्ति-केन्द्र हैं और उनके सेवा-कार्य को अग्रसर करने हेतु विधाता द्वारा निर्दिष्ट व्यक्ति प्रतीत होते हैं।

१५ पण्डित शिब्बनलाल तर्की : ये भगवान् गोपीनाथ जी

ट्रस्ट के संयुक्त मन्त्री हैं। ये भी अनेक वर्षों तक जब-तब भगवान् जी के दर्शनार्थ आया करते थे। पूर्व जन्म के अच्छे संस्कार हैं। यदि इनके अहं ने बाधा न डाली, तो ये एक अद्वितीय सन्त होंगे। इनका मस्तिष्क परोपकारी है।

१६ बहन जयकिशोरी पटवारी : ये भगवान् जी के दर्शनार्थ सन् १९६४ से आती रही हैं और उनकी उपयोगी सेवा करती रही हैं। ये भगवान् जी ट्रस्ट की एक सक्रिय सदस्या हैं और उसकी लाइब्रेरियन हैं। ये पवित्रात्मा हैं और साधना में निमग्न रहती हैं तथा अन्य महिलाओं के लिये एक आदर्श के समान हैं।

१७ पण्डित माधव जू सथू : ये भाग्यशाली हैं क्योंकि भगवान् जी ने इनके मकान में लगभग १० वर्षों तक निवास किया। इन्होंने और इनकी पत्नी चान्दा जी ने उक्त अवधि में उनकी अच्छी सेवा की। ये भगवान् गोपीनाथ जी ट्रस्ट के उपाध्यक्ष (वाइस प्रेसीडेण्ट) हैं।

१८ श्रीमती धनवती धर : ये लगभग दो दशकों तक भगवान् जी के दर्शनार्थ आती रहीं और उनकी उपयोगी सेवा करती रहीं। सम्भवतः ये भगवान् जी को अपना गुरु मानती हैं। ये अन्य सन्तों के भी दर्शनार्थ जाती हैं। ये उदार हैं और साधिका हैं। इनकी पुत्री श्रीमती गौरी करिहालू भी भगवान् जी की भक्त रही हैं।

१९ पण्डित आनन्द कौल : भगवान् जी से इनका सम्पर्क दो दशकों से अधिक समय तक रहा। ये आते और भगवान् जी के समक्ष चुपचाप बैठे रहते। ये भगवान् जी ट्रस्ट के कोषाध्यक्ष हैं।

२० पण्डित अमरनाथ दफ्तरी : ये अनेक वर्षों तक भगवान् जी के प्रति श्रद्धा अर्पित करने आते रहे। इनके अन्य सम्बन्ध भी थे। ये भगवान् गोपीनाथ जी ट्रस्ट के लेखाकार के रूप में कार्य करते रहे हैं। इनके पिता भी, जो एक सन्त पुरुष हैं, उनके भक्त थे। जब वे वृद्ध हो गए, तब भगवान् जी ने उनकी वृद्धावस्था के कारण उनसे दर्शनार्थ आने के लिए मना कर दिया।

२१ भगवान् गोपीनाथ जी ट्रस्ट के अध्यक्ष (प्रेसीडेण्ट) पण्डित श्रीधर जू धर का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है, जो उस समय से, जब भगवान् जी डलहसनयार मुहल्ला, श्रीनगर के पण्डित नील कौल सर्राफ के मकान में गए (१६-३७-४७), उनके दर्शनार्थ जब-तब आते रहे और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। ट्रस्ट को संगठित करने में इन्होंने महती सेवा की। यद्यपि इनके अन्य सम्बन्ध हैं, तथापि इन्होंने भी भगवान् जी की कृपा अर्जित की। गृहस्थ होते हुए भी ये एक सन्त हैं।

अब उन भक्तों का उल्लेख किया जा सकता है, जिन्होंने भगवान् जी के महा-निर्वाण के बाद उनकी कृपा प्राप्त की।

२२ पण्डित हरिकिशन मिर्ज़ा : ये एक दशक से अधिक समय से भगवान् जी के स्थान पर जब-तब आते रहे हैं और भगवान् जी ने इन्हें आशीर्वाद दिया था। ये आध्यात्मिकता के पथ पर अच्छी तरह आरूढ़ हैं। इनके अन्य सम्बन्ध भी हैं।

२३ पण्डित मोहन किशन तिकू : इनके भी पूर्व जन्म के संस्कार उत्तम हैं। ये एक शान्त और निराडम्बर सामाजिक कार्यकर्ता हैं तथा उत्तम साधक हैं और आध्यात्मिकता के सूक्ष्म क्षेत्रों में छलांग लगाने को समुद्यत हैं। एक वर्ष पूर्व जब मैंने

संगठक का कार्य छोड़ा, तब से ये भगवान् गोपीनाथ जी ट्रस्ट के संगठक (आर्गनाइज़र) के रूप में कार्य करते आ रहे हैं।

२४ पण्डित गोपीनाथ मल्ला : भगवान् गोपीनाथ जी की कृपा से आध्यात्मिक क्षेत्र में इनकी प्रगति उल्लेखनीय ढंग से तीव्र रही है। अपने सारे जीवन ये ब्रह्मचारी रहे हैं और साधना में अत्यधिक समय बिताते हैं। ये भगवान् गोपीनाथ जी ट्रस्ट के एक उपाध्यक्ष (वाइस प्रेसीडेण्ट) भी हैं।

२५ पण्डित जियालाल नेहरू : ये एक साकार उपासक हैं और आश्रम के कार्य में लगे रहते हैं। भगवान् गोपीनाथ जी ट्रस्ट के ये व्यवस्थापक (मैनेजर) हैं।

२६ पण्डित श्यामलाल धर : इनके भी संस्कार उत्तम हैं और ये भगवान् जी ट्रस्ट के प्रचार-मन्त्री के रूप में कार्य कर रहे हैं। ये एक उत्तम कार्यकर्ता हैं तथा भक्त हैं।

२७ पण्डित शम्भुनाथ भान : ये श्री रामकृष्ण मिशन के एक सदस्य हैं। ये अनेक वर्षों तक भगवान् जी के दर्शनार्थ आते रहे। ये देवी मां के भक्त हैं और कदाचित् उनके दर्शन प्राप्त किए हैं। भगवान् जी इन्हें प्रायः अपनी चिलम स्वयं पी चुकने के बाद दिया करते थे। इन्होंने आश्रम के कार्य में रुचि ली है।

२८ पण्डित वेश काक (गौखन, श्रीनगर) : ये प्रायः भगवान् जी के दर्शनार्थ आया करते थे और एक अच्छे साधक हैं।

२९ पण्डित शम्भुनाथ कौल (गासी) : ये अनेक वर्षों तक भगवान् जी के दर्शनार्थ आते रहे, जिन्होंने अनेक संकटों में सहायता कर इन्हें बचाया। ये देवी मां के भक्त हैं।

३० पण्डित जवाहरलाल मल्ला : ये भाग्यशाली हैं क्योंकि



दुर्गा मन्दिर में श्रीभगवान् जी की प्रतिमा का चित्र

१९५७-६८ की अवधि में भगवान् जी ने इन्हीं के मकान में निवास किया। ये कमला जी (भगवान् जी की बहिन की पुत्री) के पुत्र हैं और इन्होंने उनकी अच्छी सेवा की। ये अपने निजी मकान में भगवान् जी के कुछ स्मृति-चिह्न और उनका आसन सुरक्षित रखे हुए हैं।

३१ पण्डित त्रिलोकीनाथ काचरु : ये भगवान् जी की छोटी बहिन के पुत्र हैं। ये भगवान् जी के स्थान पर जब-तब आया करते थे और उनकी सेवा भी की। ये भाग्यशाली हैं क्योंकि भगवान् जी इनके मामा थे। इन्होंने आश्रम के लेखा को व्यवस्थित किया है।

३२ पण्डित राधाकिशन बजाज : इन्होंने भगवान् जी के आश्रम के निर्माण में अत्यधिक रुचि ली। वस्तुतः वर्तमान स्थान में आश्रम का निर्माण किए जाने में इन्होंने पण्डित गोपीनाथ मल्ला के सहित हमारी बड़ी सहायता की।

३३ जस्टिस जे० एन० भट : इन्होंने भगवान् जी के दर्शन केवल कुछ ही अवसरों पर किए थे, किन्तु आश्रम के हित में इन्होंने गहरी रुचि ली है।

३४ हकीम श्यामलाल भट : ये भगवान् जी के दर्शनार्थ जब-तब आया करते थे और उन्हें अति पूजनीय मानते थे तथा उनकी उपस्थिति में शान्ति का अनुभव किया करते थे।

३५ पण्डित अमरचन्द काव : ये पूजनीय वयोवृद्ध पुरुष, जो अनेक वर्षों तक प्रतिदिन शारिका भगवती देव-स्थान की परिक्रमा करते रहे, एक दशक से अधिक समय तक प्रतिदिन भगवान् जी के दर्शनार्थ आते रहे।

३६ पण्डित ठाकुरदास : ये अपने सारे जीवन प्रातः-काल हारि पर्वत देव-स्थान को जाते रहे और एक पुण्यात्मा

व्यक्ति थे। अनेक वर्षों तक प्रति रविवार को ये भगवान् जी के दर्शनार्थ आते रहे।

३७ पण्डित त्रिलोकीनाथ रैना : आश्रम की प्रारम्भिक अवस्था में उसके निर्माण के सम्बन्ध में इन्होंने अत्यधिक रुचि ली।

३८ डा० शंकरनाथ गंजू : ये और इनकी पत्नी अनेक वर्षों तक भगवान् जी के भक्त रहे।

३९ जो महिलाएँ भगवान् जी के ध्यान में आईं और जो प्राय: उनके निवास-स्थान पर आती रहीं, उनमें से निम्न विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

(१) श्रीमती रतन रानी माम और उनकी दो भाग्यशालिनी पुत्रियाँ,
(२) श्रीमती सर्वानन्द मुन्शी,
(३) श्रीमती शोभावती सर्राफ,
(४) श्रीमती भुवनेश्वरी,
(५) श्रीमती नारायण कौल,

४० भक्तों का एक समूह भी उल्लेखनीय है, जो प्रति रविवार को भगवान् जी के स्थान पर आया करता था—

(१) पण्डित जानकीनाथ खर, (२) पण्डित नाथ जी ज़ाड़, (३) पण्डित ग्वाशलाल मल्ला, (४) पण्डित शिवनाथ बख्शी, (५) पण्डित निरंजन नाथ, (६) पण्डित व्यथलाल धर, जो प्रति रविवार को भगवान् जी को सन्तूर का संगीत सुनाया करते थे, (७) पण्डित बद्रीनाथ कौल (कण्ठ-संगीतज्ञ), (८) पण्डित सालिगराम खुढबली, (९) पण्डित एम० एन० गंजू, (१०) पण्डित सोमनाथ काक।

४१ भगवान् जी के आश्रम के कार्य में लगे नवयुवकों

का भी एक दल है, जो यहाँ उल्लेखनीय है—

(१) श्री शादीलाल जी –भगवान् जी ट्रस्ट में खजांची (कैशियर) का कार्य करते हैं, (२) श्री गोपीकृष्ण कौल, (३) श्री जानकीनाथ जी और (४) श्री सोहनलाल खुर्दी।

४२ स्वर्गीय महाराज हरिसिंह के शिल्पकार पण्डित विश्वेश्वरनाथ तिकू, जिन्होंने आश्रम के निर्माण की उत्तर अवस्थाओं में और भगवान् जी की प्रतिमा के स्थापन में बहु-मूल्य सलाह दी थी और श्री जगरनाथ चन्द्रा शास्त्री का ॐकार-रेखा-चित्रों के प्रस्तुत करने तथा आश्रम के अन्य कार्यों के लिए विशेषतया उल्लेख भी यहाँ आवश्यक है।

कश्मीर के बाहर के भगवान जी के शिष्यों और भक्तों की सूचना इस जीवनी के नवीन संस्करण में दी जायगी।

दो जीवन्मुक्तों के मध्य सम्पर्क

राजयोगी श्री अरविन्द घोष ने कहा है कि 'सन्तों का जीवन उनके बाह्य व्यवहारों में, जो लोगों को दिखाई देते हैं, निहित नहीं होता।'

इसी के समान दृढ़ कथन सकोरी बाबा का है कि 'सन्तों का मुख्य कार्य तारों के स्तर पर (अन्तरिक्ष में) होता है, जिसे बुद्धि के लिये समझना असम्भव है।' उनके अनुसार सन्तों का कार्य है आत्माओं की रक्षा करना या जिस स्रोत से उनका उद्भव हुआ है, उसी में उन्हें लय कराना। भगवान् श्री सत्य साईं बाबा के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिये बँगलोर के कुछ सज्जनों के प्रयास निस्सन्देह अत्यन्त रोचक हैं। तीन परिमाण-वाले ये लोग, जिनकी अनुभूति पञ्चेन्द्रिय-गम्य ज्ञान तक सीमित है, एक बहु-परिमाणवाले व्यक्ति की आध्यात्मिकता की गहराई को मापने का प्रयास कर रहे हैं! भगवान् श्री सत्य

साईं बाबा अतीन्द्रिय अनुभूति से विभूषित हैं। निश्चय ही यह बड़ा उपहासास्पद है। यदि ये लोग विनम्र सहिष्णुता-पूर्वक उनके सम्मुख नत-मस्तक होते और अपनी जाँच प्रारम्भ करते, तो इन्होंने उनकी महत्ता के विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त किया होता। यह इनके लिये बड़ा हितकर सिद्ध हुआ होता और इससे ये आध्यात्मिक प्रगति के मार्ग में आ जाते, जिसके फल-स्वरूप ये क्रम-बद्ध संसार के रहस्यों को और अधिक अच्छी तरह समझने में समर्थ हो जाते।

कम-से-कम इस शती के सबसे महान् कश्मीरी सन्त भगवान् गोपीनाथ जी ने अपने नश्वर शरीर का त्याग मई १९६८ में किया और उनकी पुण्य स्मृति में एक आश्रम खरयार, श्रीनगर, कश्मीर में निर्मित किया गया, जहाँ उनकी प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई है। भगवान् श्री सत्य साईं बाबा का उनसे सम्पर्क है, इसकी पुष्टि निम्न घटना से होती है। इस घटना का वर्णन भगवान् गोपीनाथ जी के एक शिष्य पण्डित शङ्करनाथ ज़ाडू ने किया है, जो लगभग तीन दशकों तक भगवान् गोपीनाथ जी के पास जाते रहे और उन्हें अपनी श्रद्धा अर्पित करते रहे। वे पूर्णतया विश्वसनीय व्यक्ति हैं। श्री ज़ाडू पिछले साढ़े पांच वर्षों से लगातार (सितम्बर १९७१ से मई १९७६ तक) बम्बई में निवास कर रहे थे और इस अवधि में वे अपने मूल स्थान श्रीनगर (कश्मीर) नहीं आये और इस घटना की सूचना वे और पहले नहीं दे सके। उन्होंने सूचित किया है कि—

'मई १९७० में मेरी पत्नी श्री प्रभावती ज़ाडू का स्वर्गवास हो गया। उनकी अचानक और असामयिक मृत्यु से, जिससे मेरी अत्यधिक आर्थिक क्षति भी हुई, मेरी शारीरिक दशा

अस्त-व्यस्त हो गई और फलतः मैं एक गम्भीर स्नावयिक विश्रृंखलता से ग्रस्त हो गया। मैं एक विक्षिप्त की तरह भटक रहा था और कठिनाई से मेरी कोई इच्छा रह गई थी। दिसम्बर १९७३ में मेरी पुत्री ने, जो मेरे स्नावयिक कष्ट के कारण बहुत दुःखी थी, अपने पति को, जो श्री भगवान् सत्य साईं बाबा भक्त हैं, इस बात के लिये सहमत किया कि वे मेरे मामले को सहायतार्थ उनके समक्ष रखें। धर्म-क्षेत्र (अँधेरी), बम्बई में बाबा एक भाषण देनेवाले थे और उन्होंने मुझे इस उत्सव में जाने के लिये वस्तुतः बाध्य किया और मुझे अनिच्छा होते हुये भी जाना पड़ा। जैसे ही मैं उक्त स्थान पर पहुंचा, मैं वहाँ बाबा के भाषण को सुनने के लिये एकत्र ४०,००० से भी अधिक लोगों की भीड़ तथा भजन गाती हुई सङ्गीत-मण्डलियों को देखकर चकित हो उठा। अपना भाषण समाप्त करने के बाद बाबा भीड़ में से होकर अपने ठहरने के कक्षों की ओर चले और उस स्थान तक आये, जहाँ मैं बैठा हुआ था। जैसे ही वे मेरे सामने आये, उन्होंने कहा कि 'तुम्हारे गुरु (अर्थात भगवान् श्री गोपीनाथ जी, जो मई १९६८ में देह छोड़ चुके थे) ने तुम पर कृपा करने के लिये मुझे निर्देश किया है।' साथ ही उन्होंने मुझसे पूछा कि 'क्या तुम विक्षिप्त हो ?' मैंने स्वीकृति में संकेत किया कि ऐसा ही है। उन्होंने अपने दाएँ हाथ को तेजी से चक्राकार घुमाया और अचानक उनके दाहने अँगूठे से भस्म स्फुटित होती प्रतीत हुई। उन्होंने इस भस्म को मुझे दिया और निर्देश किया कि 'इसमें से कुछ खा लो और शेष अपने मस्तक पर लगा लो।' जैसे ही मैंने भस्म खाई, मैंने अनुभव किया कि मानो एक विद्युत्-प्रवाह मेरे सिर से पैर तक दौड़ गया और मुझमें अचानक एक परिवर्तन आ गया। मैं सुव्यवस्थित हो उठा और

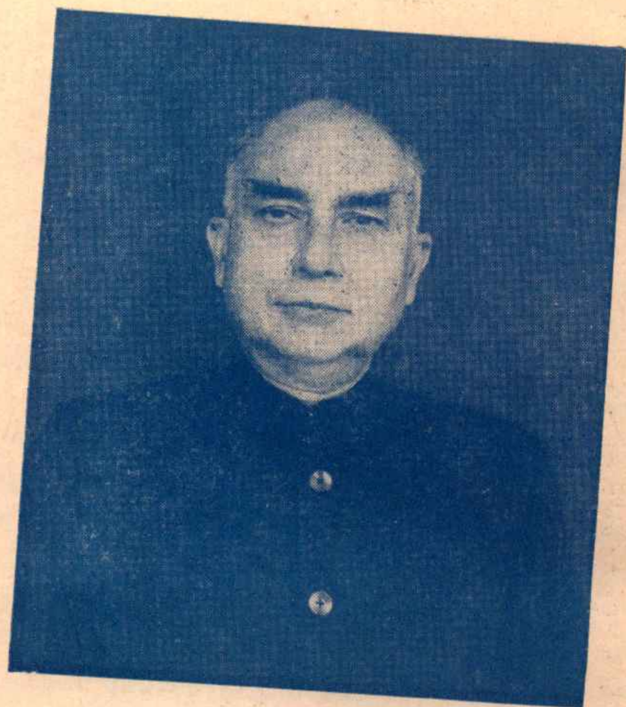
अपनी मूढ़ता तथा अज्ञता पर पश्चात्ताप करने लगा।

जब कि बाबा मेरे सामने खड़े थे, उन्होंने कहा कि 'तुम्हारे गुरु (अर्थात् भगवान् गोपीनाथ जी) सबसे महान् सन्त थे, जिन्हें काश्मीर ने प्रकट किया है और वे जीवन्मुक्त थे तथा वे मृत नहीं हैं।' उन्होंने मुझे यह भी बताया कि 'वे (भगवान् गोपीनाथ जी) अगले दो महीनों में तुम्हें दर्शन देंगे।'

यह देखकर कि बाबा ने मुझ पर अपनी कृपा की है मेरे आस-पास के लोग चकित हो गये और कई सौ लोग मेरे पीछे-पीछे आने लगे, जब तक कि हम उस टैक्सी तक नहीं पहुंच गये, जो हमें वापस घर ले आई।

भगवान् गोपीनाथ जी ने अगले दो महीनों में मुझे अनेक बार दर्शन दिये और इस परिवर्तनशील जगत् के मिथ्या स्वरूप तथा मोक्ष पर बल देते हुये ईश्वर-साक्षात्कार एवं मोक्ष से सम्बन्धित समस्याओं को स्पष्ट किया।'

उक्त घटना से स्पष्ट है कि भगवान् गोपीनाथ जी (नश्वर देह-रहित एक जीवन्मुक्त) ने किस प्रकार अपने भक्त की सहायतार्थ भ० श्री सत्य साईं बाबा को निर्देश दिया। हमारे सनातन धर्म, जिसके स्रोत आज सूखते से प्रतीत होते हैं, उसके पुनरुत्थान के महान् सुधारकों में से एक का व्यापक कतव्य-निर्वाह करने के लिये भगवान् श्री सत्य साईं बाबा शोरदी के श्री सत्य साईं बाबा के तेज-सहित, जिनके कि वे अवतार हैं और काश्मीर के भगवान् श्री गोपीनाथ जी तथा सम्भवतः अन्य जीवन्मुक्तों के तेज से युक्त होकर अवतरित हुये हैं। यह भारत के लिये एक शुभ लक्षण है। कहा गया है कि यदि इस संसार में एक सच्चा ज्ञानी है तो उसका प्रभाव न केवल उसके शिष्यों का अपितु सारे विश्व का कल्याण करेगा।



न्यायमूर्ति पण्डित शिवनाथ काटजू

उपसंहार

कश्मीर के कौल-सम्राट् भगवान् गोपीनाथ जैसे महापुरुषों को शृङ्खला भारत में अविरल धारा-रूपेण सदैव प्रवाहित रही है और उन्हीं सन्तों के द्वारा हमारे देश की संस्कृति की रक्षा निरन्तर होती रही है। भारत के विभिन्न क्षेत्र ऐसे देव-तुल्य व्यक्तियों की क्रीड़ा-भूमि रहे हैं और आजकल की स्थिति को देखते हुये प्रतीत होता है कि विधि ने यही उचित समझा कि भगवान् श्री गोपीनाथ जी का जन्म कश्मीर में हो और उसी प्रान्त को उनके कार्य-कलाप का क्षेत्र होने का गर्व मिले। आज कश्मीर की भूमि समस्त भारतवासियों के लिये कर्म-भूमि बन गई है। विशेषतः जम्मू-कश्मीर में देश के सीमाओं की रक्षा के लिये भारत के विभिन्न प्रान्तों के सहस्रों शूर-वीरों ने अपने प्राणों की आहुतियां देकर उसे रक्त-रंजित ही नहीं अपितु राष्ट्रीय तीर्थ-स्थल बना दिया है। ऐसे तीर्थ-स्थल में एक दिव्य और त्रिकाल-दर्शी महात्मा का प्रादुर्भाव स्वाभाविक ही था और उस रिक्त स्थान की पूर्ति भगवान् गोपीनाथ जी ने की।

ऐसे महा-सिद्धों की लीला विलक्षण ही रहती है। भले ही भगवान् गोपीनाथ जी का सारा जीवन काश्मीर की घाटी ही में बीता, परन्तु उनकी ज्योत्स्ना उनके प्रदेश तक ही सीमित नहीं रह सकती और न वह उनके पार्थिव जीवन के साथ समाप्त हो सकती है। उनकी स्मृति और प्रभाव से समस्त राष्ट्र को नव जीवन मिलता रहेगा। भगवान् गोपीनाथ जी की साधना उनकी कुलदेवी श्रीशारिका भगवती की आराधना से प्रारम्भ हुई थी और वे अपने कुल-माग पर चलकर कौलत्व तक पहुँचे थे। श्रेष्ठतम कौल साधक सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है। वह सृष्टि में रहते हुये भी विधि के विधान से परे हो जाता

है और वह अपने ही पृथक् सौर-मण्डल का सूर्य बनकर पृथ्वी पर विचरता है। यही परा-विद्या और अघोर की चरम सीमा है, जो मानव को कौलत्व के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचा देती है।

ऐसे महान् सन्त पार्थिव देह त्यागने के बाद भी अपना कार्य करते रहते हैं। इस तथ्य की सार्थकता आज श्रीनगर, काश्मीर के भगवान् गोपीनाथ आश्रम की स्थापना के पश्चात् दिखाई दे रही है। भगवान् गोपीनाथ जी की पार्थिव देह के निधन होने के कुछ समय के उपरान्त इस आश्रम की स्थापना हुई और शीघ्र ही भगवान् जी के भक्तों ने 'शाक्त-शिरोमणि' श्रीमान् पण्डित श्रीधर जू धर महाराज और पण्डित शङ्करनाथ जी फ़ोतदार के नेतृत्व में, अपनी अटूट लगन और श्रद्धा से कार्य करते हुये भगवान् श्री गोपीनाथ जी आश्रम को श्रीनगर का एक ज्वलन्त पीठ-स्थान बना दिया है। यही प्रतीत होता है कि इसी केन्द्र के माध्यम से भगवान् जी की लीला प्रसारित हो रही है और भविष्य में और अधिक तीव्रता से होगी। यह कार्य है राष्ट्र-जीवन का आध्यात्मिक पुनरुद्धार।

पंडित शङ्करनाथ जी फ़ोतदार ने भगवान् गोपीनाथ जी की जीवनी अंग्रेजी भाषा में लिखकर एक बड़ा समाज-कल्याणकारी कार्य किया है। यदि वे उसे नहीं लिखते तो भगवान् जी की जीवनी की बहुत सी बातें अतीत के गर्भ में विलीन हो जातीं। पण्डित रमादत्त शुक्ल ने बड़ी सुन्दर भाषा में अंगरेजी में लिखित उक्त जीवनी का अनुवाद किया है। मैंने इसमें केवल इधर-उधर कहीं-कहीं कुछ शब्दों का हेर-फेर किया है। अब भगवान् गोपीनाथ जी की यह जीवनी लोक-हित की दृष्टि से प्रस्तुत है और इसका स्वागत होगा।

प्रयाग, २७-१२-१९७६

—शिवनाथ काटजू